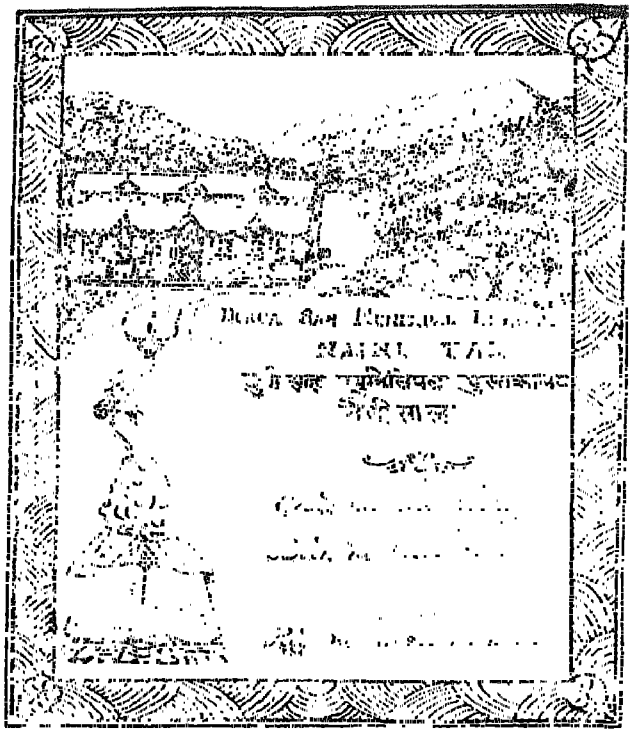

राजकमल कथा साहित्य — ६

उबाल

डॉ० रांगेय राघव

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई नई दिल्ली

कापी राइट, १९५४

मूल्य एक रुपया चौदह आने

प्रकाशक—राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई ।

मुद्रक—गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली ।

उपसंहार

उस वैभवशाली घर के बड़े हॉल में से जो सीढ़ी ऊपर जाती थी, वह इस समय गूँज रही थी। एक पतला-दुबला आदमी जाँघिया और छोटा ब्लाउज़ पहनने वाली, कन्धों पर लहराते कटे बालों वाली एक लड़की के साथ अंग्रेज़ी ढंग से नाच रहा था और अपने फटे स्वर में गाता जाता था। करीब सात-आठ ऐसी ही लड़कियाँ बर्मीज़ पोशाक पहने एक औरत को घेरे बैठी थीं, जो इस समय मस्त होकर पियानो बजा रही थी। जब उसे फ़ुरसत मिलती, झट से अपने बटुए से छोटा-सा शीशा निकालकर अपना मुँह देखती, फिर होठों पर लाल कूँची-सी फेरती और तब जब वह हँसती, उसके दाँत सफ़ेद-सफ़ेद चिलकते।

पुरुष का नाम इन्द्रभान था। वह एक पतलून और कमीज़ पहने था। नाचते-नाचते जब वह पियानो वाली औरत के पास आ गया तो बड़े नाटकीय ढंग से घुटनों पर बैठकर उसने कहा—"रीता देवी! मैं तुमसे प्रेम नहीं करता।"

उपस्थित लड़कियाँ खिलखिलाकर हँस दीं। उनके हास्य में जब पुरुष का भी स्वर मिला, तब वह आवाज़ बहुत तेज़ी से सीढ़ी के नीचे दौड़ी और उसने वहाँ वृद्ध जीवन को रोक दिया। बूढ़ा जीवन इस घर का पुराना नौकर था। वह उदास था। उसके जीवन की लालसाएँ हमेशा के लिए अपूर्ण ही रह गईं। इच्छाएँ तो किसी की भी पूरी नहीं

होतीं। जीवन धीरे-धीरे बाहर चला गया।

उबाल का अञ्जाम भाप होता है, लेकिन कोई नहीं जानता कि ज़िन्दगी की तपिश के लिए पानी कहाँ-कहाँ से इकट्ठा होता है। लेकिन ऊपर हँसते हुए लोगों के जशन में कोई कमी नहीं आई। वे नये मालिक थे और जायदाद के नये मालिकों का दिल ऐसा ही होता है। बरसता पानी भी जब पहाड़ों की चोटियों पर गिरता है तो जमकर बर्फ़ हो जाता है।

और उदास जीवन ने सोचा, कहाँ मनोरमा और सत्यपाल, कहाँ विलास और सरस्वती....

१

गाँव के एक छोटे-से घर में वह बिस्तर पर पड़ी 'नारी का मोल' पढ़ रही थी। वह तन्मय हो रही थी। वह एक साड़ी और कुर्ती पहने थी। घर गाँव के ब्राह्मणों के पाड़े में था। किसी ने आवाज़ दी—"सरस्वती! सरस्वती!!"

और बिना रुके वह आदमी घर के भीतर आ गया। किताब पढ़ते देखकर वह ठिठक गया। उसे कुछ झुँझलाहट-सी हुई। उसने कहा—"पढ़ती ही रहोगी?"

और उसने एक मूँढी पर बैठकर कहा—"इतनी किताबें तू क्यों पढ़ती है?"

लड़की उठकर बैठ गई। साँवला रंग, लम्बी आँखें, गम्भीर मुख। पर स्पष्ट ही ग्राम्यत्व उसकी आकृति में प्रकट था।

लड़की ने कहा—"गाँव के पण्डित की बेटी हूँ न? दादा होते तो आज मैं न जाने कितना पढ़ गई होती।"

"कितना पढ़ जाती? वे होते तो अब तू दो बच्चों की माँ होती।"

"चलो हटो। तुमको यह बातें करते लाज नहीं आती?" लड़की ने चिढ़कर कहा।

अपने घने बालों में उँगली फेरते हुए उस आदमी ने कहा—"आती क्यों नहीं है? पर अक्सर तुझे देखकर मैं अपनी मास्टरी भूल

जाता हूँ। दिन-भर पढ़ती है, दिन-भर।"

आगंतुक ने किताब छीन ली। दुपहर का एकान्त था, जब गाँव में रास्ते सुनसान-से हो जाते हैं। लड़की ने कहा—"तुम काका की गैर-हाज़िरी में भीतर कैसे आ गए। अजीब मास्टर हो। पढ़ने तक नहीं देते।"

आदमी ने कहा—"विलास तेरे सामने मास्टर नहीं रहता। आज मैं तुझसे पूछने आया हूँ।"

"क्या पूछते हो, पूछो।"

विलास का मुख एकदम लाल हो उठा। उसने धीमे से कहा—"यहाँ नहीं कहूँगा।"

"तो कहाँ कहोगे? मेरे पास तुम्हारी बात सुनने को इतनी फ़ुरसत है कहाँ, मैं तो अपना बाग देखने जाती हूँ। तुम जाओ। कोई तुम्हें यहाँ देख लेगा तो मैं बदनाम हो जाऊँगी।"

लड़की की आँखों में एक मुस्कराहट दिखाई दी। विलास उठ खड़ा हुआ। बोला—"जाता हूँ।"

उसके चले जाने के बाद वह उठी और उसने बालों में लकड़ी की कंघी फेरी और धीरे-धीरे अपने बाग की तरफ चल पड़ी।

जहाँ गाँव ख़तम होता था वहाँ नदी के किनारे, सामने के छोटे पहाड़ के शहर जाने वाले रास्ते को देखता हुआ सरस्वती का आम का बाग़ था। सरस्वती ने वहाँ गाँव के एक ग़रीब लड़के को रखवाली पर रख दिया था। बाप मरा तो काकी ने उसे पाला, पर जब वह मरी तो सरस्वती खुद खाना बनाना जानती थी। गाँव की लड़की को एकान्त में ही रहना पड़ा। यार लोगों ने नज़र तो डाली, पर तभी काका ने शहर से आकर विलास से शादी तय कर दी। अब की बार के फागुन में ही होने वाली थी, क्योंकि देव सो गए थे। गाँव वालों का मुँह तो बन्द हो गया, पर काका को शहर और गाँव दोनों को सँभालने का काम हो गया।

छोटा-सा आम का बाग सुन्दर था। जिस समय सरस्वती पहुँची,

रखवाला वहाँ नहीं था। सरस्वती मन-ही-मन बुदबुदा उठी। अजीब मूर्ख है, जब देखो ग़ायब। एकाएक किसी ने उसकी आँखें मींच ली। सरस्वती भय से चीख उठी। मुड़कर देखा, विलास था।

"तुम यहाँ?" वह चौंक उठी।

"क्यों?" विलास ने कहा—"क्या हुआ? तुमने ही तो कहा था बाग़ में मिलना।"

"छि:," सरस्वती ने कहा—"तुम कोई मेरे दोस्त नहीं हो, पति होने चाले हो।" यह कहते-कहते उसका मुँह कान तक लाल हो उठा।

पेड़ पर कोयल बोली। सरस्वती उसे देखती हुई बढ़ी। विलास चुप रहा। उसने धीरे से कहा—"सरस्वती!"

उसने सुना नहीं। कोयल को ही देखती रही। विलास ने एक आम खींचकर उसके मारा। सरस्वती चिहुँक उठी। उसने धीरे से मुस्कराकर कहा—"मेरी कमर टूट गई तो कोई ब्याह भी नहीं करेगा।"

विलास ने कहा—"शायद मैं फिर भी कर लूँगा।"

सरस्वती ने दृढ़ता से कहा—"यह आम का पेड़ हमारा गवाह है।"

"नहीं, गवाह नहीं, पुरोहित है।"

"मैं इस पेड़ के नीचे सौगन्ध खाती हूँ कि जब तक जिऊँगी, तुम्हारे लिए जिऊँगी।"

"और," विलास ने कहा, "मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तेरे सिवा सुपने में भी किसी को अपने ध्यान में न लाऊँगा।"

कुछ देर दोनों एक-दूसरे को निस्तब्ध अमराई में देखते रहे। उनकी राय में यह उनके जीवन का एक महान् क्षण था। दूर मन्दिर में शंख बजा। सरस्वती ने कहा—"हाय राम! कितनी देर हो गई। जीवन काका बैठे होंगे। जल्दी चलो।"

वृद्ध जीवन द्वार पर आ बैठा था। गाँव की एक बूढ़ी रमिया उधर से निकली। किशन ने टोका, "सरस्वती कहाँ है काका?"

किशन को गाँव बेवकूफ समझता था। जीवन ने अपने माथे पर

हाथ फेरकर रमिया से कहा—"देखती हो मंगू की माँ! बच्चे बड़े शैतान होते जा रहे हैं। फिर अब तो बड़े होते जा रहे हैं, पर अकल फिर भी नहीं आई।"

मंगू की माँ ने कहा—"अब अपना वक्त याद करो। तुम्हीं कौन सीधे थे! बिना प्यास के पनघट पर पानी पीने आते थे। तुम्हारी भतीजी है। जल्दी ब्याह क्यों नहीं कर देते?"

किशन ने चौंककर पूछा—"अच्छा पहले जीवन काका भी ऐसे ही थे?"

एकाएक इस प्रश्न पर दोनों चौंक उठे। मंगू की माँ चल दी। जीवन ने डाँटा, "चुप रह। गधा!"

इसी समय विलास और सरस्वती ने प्रवेश किया। जीवन क्षण-भर उन्हें बिना ब्याह के ऐसे खुलकर घूमते देखकर ठिठका। फिर उसने धीरे से कहा—"तुमको शायद याद नहीं रहा कि मुझे शहर जाना है।"

सरस्वती ने जीभ काट ली। खाना खाकर वे लौटे। अमराई की ओर चलते हुए विलास ने पूछा—"हवाई जहाज़ से?"

जीवन ने गर्व से कहा—"नहीं तो क्या?"

विलास प्रभावित हुआ। उसके मुख से निकला, "क्या ठाठ होते हैं उनके जो हवाई जहाज़ पर चढ़ते हैं?"

सरस्वती चिढ़ी। कहा—"फिर तुम अमीरों के रोब में आने लगे। होते कैसे हैं? जैसे हम-तुम, वैसे ही वे।"

जीवन वार्द्धक्य के अनुभव से यह वितृष्णा समझा, हँसा। कहा: "अच्छा, अब तुम लौट जाओ। मैं चला जाऊँगा। आज मालिक हवाई जहाज़ से लौटेंगे, तब मेरा घर में रहना जरूरी है।"

सरस्वती ने चरण छुए। कहा—"कब लौटोगे?"

काका ने मुस्कराकर कहा—"तेरे ब्याह पर।"

सरस्वती ने लजाकर सिर झुका लिया। काका चला गया।

हवाई अड्डे पर पतले-दुबले इन्द्रभान ने जहाज़ से उतरते ही सत्यपाल को देखकर सिर झुकाकर सलाम किया। सत्यपाल अधेड़ आदमी था, लगभग चालीस के। उसकी कनपटियों पर दो-चार बाल सफ़ेद हो चले थे। जीवन का अनुभव उसके लिए केवल आनन्द ही था, यह उसकी मुद्रा से प्रगट होता था। गम्भीर व्यक्ति था, विलायती कपड़े पहने था, और उसमें एक दबी हुई अहम्मन्यता थी कि वह सबको अपने सामने इतना छोटा समझता था कि मुस्कराकर उत्तर देता, बहुत ही नम्र बनकर बातें करता। उसे घंटों चुप रहने की आदत थी। व्यापार की चालाकियों ने उसे सभ्यता के सारे जाल फैलाना सिखा दिया था।

उसने बहुत ही हर्ष दिखाकर पूछा—"मज़े में तो रहे?"

इन्द्रभान ने सिर झुकाया। वह इतना गम्भीर उत्तर था कि उसका कुछ भी अर्थ हो सकता था।

लम्बी मोटर भाग चली। पूरे रास्ते में सत्यपाल ने कहा—"फ्रांस! फ्रांस भी देखने लायक जगह है, मैनेजर!"

गूँगे का गुड़ था। आगे कहना जैसे उसके लिए कठिन था। हृदय में अभी तक ऊष्मा छा रही थी।

इन्द्रभान ने तिरछी आँखों से देखा, और धीरे से कहा—"हरीश बाबू विलायत गये हैं।"

सत्यपाल हँसा। उसने पूछा, "अब गया है जब हम लौट आए!"

उसके मन में प्रश्न उठा। पर वह पूछ नहीं सका। ड्राइवर ने गाड़ी रोक दी। इन्द्रभान ने उतरकर दरवाज़ा खोल दिया। सत्यपाल जब अपने आलीशान मकान में घुसा, एक अजीब-सी निस्तब्धता छाई हुई थी। सब-कुछ था, किन्तु जैसे कहीं प्राण नहीं थे। वस्तु ने जैसे अपना गुण-

त्मक परिवर्तन छोड़ दिया था और वह जड़ भौतिक हो गई थी। उसने चारों ओर देखा। सब नौकर सिर झुकाए खड़े थे। सत्यपाल समझा नहीं। उसने पूछा, "क्या बात है? तुम लोगों को हमें इतने दिन बाद देखकर भी कोई खुशी नहीं हुई?"

किन्तु किसी ने उत्तर नहीं दिया। माली के कातर मुख पर जो अवसाद की छाया थी, वह सबके मुखों पर ऐसे फैल गई थी जैसे कई दर्पण एक-दूसरे के सम्मुख ऐसे रख दिये गए थे कि एक-दूसरे का ही एक-दूसरे पर प्रतिबिम्ब पड़ता रहे।

सत्यपाल भीतर चला गया। उदास जीवन चन्दा के तैलचित्र के नीचे खड़ा था। सत्यपाल ने सिर उठाकर चित्र देखा और अधीर स्वर से पूछा, "जीवन! चन्दा कहाँ है?"

जीवन का हाथ काँपता हुआ बढ़ा। उसमें एक पत्र था। सत्यपाल ने गम्भीर होकर पढ़ा। केवल लिखा था—'मैं जा रही हूँ, तुम्हारे चंगुल से बचकर—चन्दा।'

आँखों को विश्वास नहीं हुआ। फिर पढ़ा। वही था। चन्दा! कहाँ चली गई? क्यों। और जैसे-जैसे यह शब्द बड़ा होता गया, सत्यपाल को लगा वह मर गया था। धरती फट गई थी और वह उसमें समाता जा रहा था। उसको जैसे चक्कर-सा आया। उसने स्तम्भ पकड़ लिया। सात समन्दरों पर उड़कर आने पर उसे ज्ञात हुआ था कि उसकी पत्नी भाग गई थी। अपमान की दारुण ज्वाला ने उसके स्वप्नों की कोर को छू दिया और वे सब रुई के ढेर की भाँति सुलग उठे। उसकी आँखों में पागलपन तड़प उठा। एक-एक करके सब नौकर सिर झुकाए चले गए। सत्यपाल को लगा जैसे चन्दा खड़ी हँस रही है। चारों ओर चन्दा-ही-चन्दा थी। और तब अन्तरल में गूँजा—'मैं जा रही हूँ, तुम्हारे चंगुल से बचकर.....'

सत्यपाल कुर्सी पर लड़खड़ाकर बैठ गया। फिर एकाएक वह खड़ा होकर चिल्ला उठा, "इन्द्रभान! जीवन!"

दोनों गम्भीर-से नत-शिर आ खड़े हुए।

सत्यपाल कुछ देर घूरता रहा। फिर उसने धीरे से कहा—"वह क्यों चली गई?"

कोई नहीं बोला। सत्यपाल को वह उदासी कचोटने लगी। उसने कहा—"जाओ!"

वे दोनों चले गए। सत्यपाल चन्दा के चित्र को देखता हुआ बैठा रहा।

शाम हो गई। जीवन ने बत्ती जलाई तो देखा मालिक उदास-से वहीं बैठे कुछ सोच रहे हैं। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ा। कहा—"मालिक!"

सत्यपाल मुड़ा नहीं। पूछा, "जीवन!"

"सरकार!"

"उसे इस घर में किस चीज़ की कमी थी?"

"किसी की भी नहीं, मालिक!"

सत्यपाल ने तीव्र दृष्टि से देखकर कहा—"तुम झूठ बोलते हो।"

वृद्ध सकपका गया। कुछ देर बीत गई। उसने फिर कहा: "मालिक! बहूजी को ढूँढ़ना चाहिए।"

"नहीं," सत्यपाल ने कटुता से कहा, "चली गई तो जाने दो। कोई किसी के बाँधे से नहीं बँधता। जाओ।"

पुरुष का विक्षोभ उदासीनता का आडम्बर खड़ा करके अपने अधिकारों पर पड़ी चोट के विष से आक्रान्त होकर अपनी अपमानित विभीषिका को छिपा लेना चाहता था।

जीवन चला गया। सत्यपाल ने उठकर सेफ़ खोला। नोटों को देखकर उसे जैसे स्वयं विश्वास नहीं हुआ। उसने चन्दा के चित्र को देखा जैसे पूछता था—'तुझे इस घर में किसकी कमी थी?' और फिर सेफ़ बन्द कर दिया। वह अपने-आप ही दर्पण के सामने खड़ा हो गया, जैसे उसने मन से पूछा—'क्या मैं कुरूप था? क्या वह इसीलिए चली गई?'

कोई उत्तर नहीं मिला। वह पराजित-सा सिर पकड़कर बैठ गया। घड़ी की नीरवता में एक टिक-टिक बज रही थी। सत्यपाल ने सिगरेट जलाकर रेडियो खोल दिया। वह उसे भूल जाना चाहता था। और रेडियो में सुनाई दिया—'समुद्र के किनारे एक औरत की कीमती गहनों से लदी लाश पाई गई है। पुलिस तलाश कर रही है। कुछ लोगों का ख़याल है कि वह एक राजकुमारी है जो रियासत....'

इसके बाद भर्र-भर्र में कुछ भी सुनाई नहीं दिया। सत्यपाल ने सुना और एकाएक वह पागल की भाँति हँस उठा। चन्दा के चित्र को देखकर वह बर्बर हास्य टुकड़े-टुकड़े होकर फर्श पर फैल गया, फैला और फिर वे स्वर सब उठ-उठकर सत्यपाल के कानों में ऐसे घूमने लगे जैसे दीपक पर पतंगे चक्कर लगाते हैं।

३

चन्दा रोने लगी। यह उसने भयानक पाप किया था। उस छोटे-से कस्बे को साँझ के धुन्ध ने ढँक दिया। चन्दा अकेली थी। 'कहाँ वह विराट् भवन, कहाँ यह छोटा-सा घर!' वह सोचती। 'क्या था जो उसे इस पथ पर खींच लाया था? क्यों भाग आई वह हरीश के साथ? कितना झूठा था वह! कितना जघन्य था! पहले तो उसने मित्र से विश्वासघात किया। फिर चन्दा से झूठ बोलकर उसे साथ ले आया। वह क्यों इतनी मूर्ख थी कि उसके साथ चली आई!'

एकाएक फिर वही हास्य सुनाई दिया। चन्दा का रोम-रोम भय से काँप उठा। वह हरीश ही था। उसके मुख से शराब की दुर्गन्ध आ

रही थी। वह सहमी हुई-सी उठ खड़ी हुई। उसने धीरे से कहा—"तुम फिर शराब पीकर आये हो ?"

"क्यों ?" हरीश ने मुस्कराकर सिगरेट जलाते हुए कहा, "तुम तो बिलकुल बहू बन बैठीं। बड़ी पवित्र स्त्री हो !"

उसने धुआँ चन्दा के मुख पर छोड़ा। चन्दा उस आघात से लहू-लुहान हृदय लिये खड़ी रही। उसे लगा, वह मुरदा थी। और हरीश का वह घृणा-भरा स्वर हास्य बनकर उसके अन्तस्तल पर अंगारे की भाँति दहक उठा।

"मैं पवित्र नहीं हूँ," चन्दा ने एकाएक कठोरता से कहा, "क्योंकि मैं मूर्ख थी, और तुम्हारी बातों में आ गई। देवता-जैसे पति को छोड़ आई और अपनी रक्षा भी मैं तुमसे नहीं कर सकी।"

"ठीक है," हरीश ने अचकन उतारकर मलमल के कुरते की आस्तीनें गर्मी के कारण चढ़ाते हुए कहा, "वह पत्र भी मैं ही लिख-कर आया था ?" वह एक भयानक विद्रूप से हँसा। चन्दा का हृदय गलने लगा। कितना पापी था वह ! वह पत्र ! पर अब वह कहे तो भी विश्वास कौन करे ? हरीश ने ही कहा था कि इन्द्रभान उसकी इज्ज़त के पीछे लगा है। सत्यपाल के आते ही हरीश इन्द्रभान को ठीक कर देगा। नौकर सब इन्द्रभान से मिल गए हैं। यहाँ रहने में बड़ा ख़तरा है। हरीश के साथ जाने में ही चन्दा का कल्याण है। उस समय बूढ़ा जीवन भी घर में न था। तभी इन्द्रभान को डराने के लिए हरीश ने जो कहा था, वही लिखकर वह खुशी से रात को उसके साथ निकल आई थी। फिर ? फिर की याद करके चन्दा का दम घुटने लगा। उसकी इच्छा हुई, वह हरीश का गला घोंट दे। परन्तु वह हिंस्र दृष्टि से उसे घूरने लगा था। एक-एक करके उसके सारे गहने ले जा चुका था। चन्दा के सिर का दर्द बढ़ गया। वह कुछ नहीं बोली। घृणा से उसका मन भर गया था। उस रात हरीश कैसा घबराया-सा आकर कह उठा था—'चन्दा ! चलो। यहाँ डर है। मैं विलायत जाना छोड़कर तुम्हें बचाने

आया हूँ। मुझे अभी मालूम हुआ है, और आज वही उसी पत्र को उसके विरुद्ध प्रयुक्त करना चाहता था। चन्दा रोने लगी।

चन्दा ने कहा—"मेरे पास अब कुछ नहीं है। मेरे सिर में दर्द है। मैं बीमार हूँ।"

हरीश हँसा। उसने कहा—"तो लौट जाओ न सत्यपाल के पास।"

चन्दा चीख़ उठी। उसने पूछा, "तो तुम मुझे छोड़ दोगे?"

हरीश—"बाज़ार पड़ा है। जो औरत अपने मालिक को छोड़कर मुहब्बत की बातों में बहककर आ गई, वह क्या किसी के लिए सच्ची हो सकती है? कभी नहीं।"

"तुम्हें झूठ बोलते शर्म नहीं आती? मेरे बिना न जाने उनका क्या हाल होगा?"

हरीश फिर कठोरता से हँसा। उसने कहा—"सत्यपाल समझ रहा होगा कि हरीश विलायत में होगा। तो क्या तू समझती है कि यदि तू उसके पास जायगी तो वह तुझे स्वीकार कर लेगा?"

चन्दा को लगा, वह पागल हो जायगी। उसने कहा—"कमीने! तूने अपने दोस्त को भी धोखा दिया।"

हरीश को क्रोध आने लगा था। उसने कठोरता से उठकर कहा—"ऐ! ख़ामोश! हलक में हाथ डालकर ज़बान खींच लूँगा। फ़ाहिशा! मेरे पास तेरी बक-बक सुनने की फ़ुरसत नहीं है। मुझे रुपये की ज़रूरत है।"

"तो मेरे पास अब क्या रखा है? जो था, वह सब तुमने शराब में फूँक दिया। अब तो खाने को भी नहीं है। कुछ काम क्यों नहीं कर लेते?"

"काम? तो क्या मैं बेकार घूमता हूँ? जब बैठता हूँ, तो एक-एक दाँव पर दुनिया पलटने का हौसला रखता हूँ।"

हठात् चन्दा फूट पड़ी—"जुआरी तुमने इतने अच्छे ख़ानदान में पैदा होकर....."

किन्तु हरीश ने काट दिया, "ओह हो ! सती चन्दा ! तुम भी तो बड़े अच्छे ख़ानदान की हो। ख़ानदानी रईस हमेशा पैसा फूँकते हैं, समझी ? ला, मुझे रुपये दे।"

उसने बढ़कर चन्दा का हाथ पकड़ लिया। चन्दा सहम गई। उसने हाथ झटके से छुड़ाते हुए कहा—"मेरे पास अब यह एक सुहाग की अँगूठी बच रही है....."

"किसके सुहाग की ?" हरीश हँसा।

"उस पवित्र प्रेम की जो मुझे पति से मिला था, जिसे मैं छोड़कर उन्हें धोखा देकर चली आई। मैं इसे कभी नहीं दे सकती।"

"नहीं देगी ?" हरीश का स्वर उठा।

"नहीं।"

"नहीं ?" वह पुकार उठा।

चन्दा फूत्कार कर उठी, "नहीं नहीं, नहीं...."

हरीश का हाथ उठ गया। चन्दा पिटती रही, पिटती रही। वह स्तब्ध खड़ी रही। उसकी आँखें देखकर हरीश मन-ही-मन सहम गया। किन्तु क्रोध ने उसे अन्धा कर दिया था। एकाएक एक आँसू उसके हाथ पर गिरा। हरीश का उठा हाथ रुक गया। उसे घूरकर बोला—"आँसू ! तू आँसू से मुझे डरा रही है ?"

"नहीं," चन्दा ने होठ काटा।

"मैं तेरे आँसू से नहीं डरूँगा, समझी ?" किन्तु फिर अचानक ही उसकी दृष्टि उस आँसू पर गई। उसने चन्दा का हाथ मोड़कर जबरदस्ती वह अंगूठी उतार ली। उस समय वह पशु की भाँति निर्मम था। चन्दा गिर गई। हरीश ने अपने पाँव से उसकी पीठ को हल्की ठोकर देकर कहा—"जायगी सत्यपाल के पास ?"

चन्दा उठ बैठी। फिर उसने धीरे से कहा—"किस मुँह से जाऊँगी ?"

हरीश हँसा। कहा—"तो जा मर ! मैं भी अब तुझे छोड़ जाऊँगा।"

"मुझे छोड़ जाओगे ?" चन्दा ने भय से आँखें फाड़कर कहा—

"फिर मेरा क्या होगा ?"

"अगर तू मुझसे यों ही लड़ा करेगी तो मैं कभी नहीं लौटूँगा। किसी तरह से सत्यपाल के पास से रुपया नहीं मँगा सकती ?"

चन्दा काँप उठी। पूछा, "यह कैसे हो सकता है ?" उसने पाँव पकड़ लिए।

हरीश ने चिढ़कर कहा—"तो तू नहीं कमा सकती ?" उसने ठोकर देकर उसे हटा दिया और चन्दा ने आँखों में आँसू भरे देखा, वह चला गया।

एक-एक करके असंख्य आँसू पृथ्वी पर गिरकर खो गए।

४

कभी समुद्र-तीर पर घूमता, कभी पार्कों में, और कभी रेस्तराँ में। जीवन की वेदना वैसे ही बढ़ रही थी जैसे मुख पर दाढ़ी। सत्यपाल का जीवन एक पहेली बन गया। वह सोचता, चन्दा को उसने क्या नहीं दिया ? फिर वह गई तो—तुम्हारे चंगुल से छूटकर, क्यों लिखा उसने ? क्या वह इतनी घृणा करती थी उससे ? फिर उसे अपने मित्र हरीश का ध्यान आया। कितना भला था वह ! इतनी सुन्दरी चन्दा को कभी उसने आँखें उठाकर नहीं देखा। कितना मान करता था उसका ! धन का उसे मोह न था। कितना शुभचिन्तक था सत्यपाल का ! सत्यपाल ने जब-जब उस पर धन खर्च किया, वह उसे रोकता था। आज वह होता तो कितनी सान्त्वना मिलती उससे ! तो क्या जीवन-भर ऐसा ही रहना होगा ? किस लिए रहे वह ऐसा ? चन्दा जीवन को भोगने जा सकती है। सब साधन रखते हुए वह फिर किस लिए बैठकर रोया

करे ? क्यों न वह महानद की भाँति गरजता हुआ दौड़ चले ? क्या रखा है सागर के उस गाम्भीर्य में जो निरन्तर हाहाकार करके भी बार-बार तट से लौट जाता है ?

इन्द्रभान कई दिन से दाँव लगा रहा था। आज स्वयं उसे सत्यपाल ने बुलाया था। वह मन में चकित था।

सत्यपाल ने पूछा, "औरत क्या चाहती है इन्द्रभान ?"

इन्द्रभान ने उत्तर नहीं दिया। हजामत का सामान सामने लाकर रखा और कहा—"शेव करते चलिए। आपने जिन्दगी का एक ही पहलू देखा है।"

सत्यपाल को आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"तुमने मुझसे ज़्यादा जिन्दगी देखी है ?"

"कुसूर माफ़ हो," इन्द्रभान ने झुककर कहा, "हुजूर ने खुशामद नहीं की, हुकूमत की है। मैंने दो कौड़ी के आदमियों पर हुकूमत की है आपके इक़बाल से और आपके सामने गुलामी भी की है। अमीर आदमी अपनी दौलत की हिफ़ाजत करता है दिन में, लेकिन अमीर का कुत्ता रात-भर अँधेरे में चक्कर लगाता है। हजामत बनाइए। मैं आपको दिखाऊँगा औरत क्या चाहती है, और मर्द की खूबसूरती क्या है....."

सत्यपाल को लगा कि इन्द्रभान कोई नई बात कह रहा है। दाढ़ी बनाकर उसने पूछा, "कुछ अच्छा मालूम देता हूँ ?"

इन्द्रभान मुस्कराया। कहा—"कोई हमसे पूछे।"

वृद्ध जीवन ने देखा। इन्द्रभान ने अचकन पहनाई। सत्यपाल के पाँव चमचमाते जूतों में घुसे।

इन्द्रभान ने कहा—"मेरे साथ चलिए।"

जिस समय वे क्लब में घुसे, नाच-गाना हो रहा था। अंग्रेजी गत पर बजते बाजे से गहरे सुर उठ रहे थे। कई औरतें हँस रही थीं। वे रंगीन होठों वाली औरतें देखकर ही चमकदार मालूम होती थीं।

इन्द्रभान एक औरत के पास गया और धीरे से उसने उसके कान में कुछ कहा। वह उठकर तुरन्त सत्यपाल के पास आ गई। सत्यपाल ने सिगरेट मुँह से लगाई, उस स्त्री ने तुरन्त माचिस जलाकर आग पैदा की और सिगरेट के छोर पर ज्वाला छुआ दी। सत्यपाल की एक ही साँस में उसके फेफड़ों तक धुआँ भर गया। जब वह धुआँ बाहर फूँका तो स्त्री की आकृति उसमें छिपकर कुछ देर को लुप्त हो गई।

जीवन के इस अनुभव में सत्यपाल को एक नयापन दिखाई दिया। अभी तक वह जैसे पहाड़ पर चढ़ रहा था। उसके घुटने थक जाते थे, उसका दिल मुँह को आने लगता था, पर उतरते वक्त उतना समय नहीं लग रहा था। सब-कुछ बड़ा सहज था। थोड़ा-सा ध्यान रखना था कि किसी ऐसे पत्थर पर पाँव न पड़ जाय जो खिसक जाय और गिराए। आसमान कभी पास नहीं आया, धरती अपने-आप उठती चली आ रही थी। एक, दो, तीन, और चौथी औरत ने जब उसकी सिगरेट जलाई तो सत्यपाल हँसा। उस शाम को उसमें स्फूर्ति थी।

उसने एक स्त्री का चित्र चन्दा के चित्र के बगल में टाँगा। जीवन चौंका। उसने कहा—"यह क्या मालिक? यह तो कोई नाचने वाली औरत दिखाई देती है?"

सत्यपाल ने मुड़कर कहा—"तुम अभी तक घर की मालकिन के सपने देख रहे हो? हो सकता है जीवन, जिसे तुम सोना कहकर मँहगा कहते हो, वह असल में पीतल ही हो! मैं नहीं जानता लोग असलियत को देखने से इतना डरते क्यों हैं? क्या यह औरत नहीं है?"

जीवन उदास-सा अपनी कोठरी को लौट गया। इन्द्रभान का अट्टहास सुनाई दिया। अगले दिन सत्यपाल ने नई तस्वीर टाँगी। जीवन ने धीमे से कहा—"मालिक! इजाज़त हो, तो कुछ अर्ज करूँ?"

"कहो जीवन।"

"मालिक, शादी क्यों नहीं कर लेते?"

"शादी?" सत्यपाल हँसा, "और यह सब मैं करता ही क्या हूँ?"

"मालिक," जीवन ने फिर कहा—"घर की एक ईंट गिरने पर कोई गुस्से से उसकी नींव खोदना शुरू कर दे तो क्या यह ठीक है ?"

'सत्यपाल ने हठात् पूछा—"जीवन ! मैं एक इमारत हूँ या इन्सान ?"

"इन्सान, मालिक !!" जीवन ने अचकचाकर कहा।

"फिर," सत्यपाल ने उसी गम्भीरता से कहा—"तुम चाहते हो मैं बार-बार कच्चा घर बनाकर इस तूफ़ानी रात में उसमें बेखबर होकर सो जाऊँ और समझूँ कि मुझे कोई ख़तरा नहीं है ?"

"हजारों-लाखों आदमी घर बसाते हैं और हजारों-लाखों में ऐसी एक-आध औरत ही निकलती है। लेकिन हजारों-लाखों नाचने वालियों में शायद ही एक-आध अच्छी निकलती है।"

सत्यपाल हँस दिया। उसने कहा—"समन्दर में से मोती निकालने के पहले समन्दर की दम-घोट लहरों में घुसना पड़ता है जिसमें भयानक जानवर पल-पल में निगलने के लिए घूमते रहते हैं।"

जीवन उदास-सा लौट गया। वह अपनी कोठरी में बैठकर सोचता रहा। उसकी आँखों में आँसू आ गए। बूढ़े ने हाथ ऊपर उठाकर कहा—"मालिक ! तेरा भी खेल अजीब है। इधर दौलत के झूले में भी नींद हराम है, उधर गरीबी के दामन में भी ज़िन्दगी कितनी ख़ुशनुमा है !"

और सरस्वती और विलास के चित्र उसकी आँखों के आगे घूम गए।

किन्तु सत्यपाल ने चन्दा के चित्र के बगल में आठवीं स्त्री का चित्र लगा दिया था। जीवन ने सुना, इन्द्रभान कह रहा था—"जी हाँ हुजूर ! गुलाम हाज़िर है। आप हुक्म दें और इन्द्रभान ख़िदमत में हाज़िर न हो। मैंने पैग़ाम पहुँचा दिया है। क्लब में आपका इन्तज़ार हो रहा होगा।"

सत्यपाल ने मुस्कराकर कहा—"चलो।"

जीवन ने बढ़कर पूछा—"भैया ! रात को देर से आओगे क्या ?"

इन्द्रभान ने शरारत से कहा—"जीवन ! तू बूढ़ा हो गया, मगर

समझदार नहीं हुआ।"

जीवन ने आँखों को मींचकर कहा—"मुझे खुशी है कि जो मैं न हो सका, वह आप इस छोटी-सी उमर में हो गए।"

सत्यपाल ठठाकर हँसा।

उस रात क्लब में छाया-नृत्य हो रहा था। सत्यपाल ने सिगरेट जलाई और फिर तभी ग्लेजर-नाच होने लगा। सत्यपाल उठ खड़ा हुआ। सबने चौंककर देखा। तभी इन्द्रभान ने आकर कहा—"चलिए।"

ग्रीनरूम में सुन्दरी मनोरमा के सामने सत्यपाल ने झुककर कहा—"आप बहुत अच्छा नाचती हैं।" वह मुस्करा दी। सत्यपाल की सिगरेट का धुआँ उसकी अपनी ही आँख में गया। इस बार वह मनोरमा के मुँह पर धुआँ नहीं छोड़ सका। उसने सिगरेट फेंककर पाँव से कुचल दी और दूसरी मुँह से लगाई। उसने देखा—मनोरमा का हाथ दिया-सलाई जलाकर उसकी सिगरेट को सुलगाने के लिए बढ़ रहा था।

सत्यपाल ने मनोरमा का चित्र अपने कमरे में जिस समय टाँगा, मनोरमा के कमरे में इन्द्रभान बैठा था। वह कुछ खुश था।

"जानते हो इन्द्रभान!" मनोरमा ने कहा, "मैंने तुम्हें क्यों बुलाया है?"

मनोरमा की सहेली युवती रीता पास ही बैठी थी। इन्द्रभान ने कहा—"शायद रीता को मुझसे मुहब्बत हो गई है, यह कहने....."

मनोरमा हँसी। इन्द्रभान ने आश्चर्य से पूछा—"क्यों, यह क्या ऐसी नामुमकिन बात है?"

रीता चुप बैठी थी। उसने चिढ़कर कहा—"आपने कभी अपनी शक्ल पर भी ग़ौर फ़रमाया है? यह देखे हैं....."

उसके गोरे पाँव पर से साड़ी टखने तक उठ गई।

वह कहती गई—"ज़रा मुकाबला कीजिए।"

इन्द्रभान ने सिर हिलाया। वह चिकना घड़ा था। उसने कहा—"पैर तो आपके अच्छे हैं, पर मुँह आपका मेरे-जैसा ही है।"

रीता नाराज़-सी उठकर चली गई। उसके जाने पर मनोरमा ने कहा—"तुम जानते हो इन्द्रभान, मैं तुम्हारा कितना ख़याल रखती हूँ?"

इन्द्रभान चौंका। उसने कहा—"अरे बीबी! मैं न होता तो तुम्हारा डान्सिंग स्कूल चल जाता?"

मनोरमा ने नहीं सुना। बोली—"सत्यपाल के पास पैसा है?"

इन्द्रभान ने सिर हिलाया—"पैसा तो है लेकिन उसके पास दिल नहीं है। पत्थर है पत्थर! लुढ़क-लुढ़ककर घिस जायगा, मगर तुम चाहो कि नरम हो जाय, सो नहीं होगा।"

मनोरमा ने जैसे फिर भी नहीं सुना। कहा—"आदमी तो अच्छा मालूम देता है।"

इन्द्रभान को अभूतपूर्व विस्मय हुआ। उसके मुँह से निकला—"अजी नहीं।"

मनोरमा मुस्कराई। उसने धीरे से कहा—"तीन दिन में वह मेरे पीछे पागल होकर घूमेगा।"

इन्द्रभान को विश्वास नहीं हुआ। उसने आँखें फाड़कर देखा। रीता लौट आई थी। मनोरमा के मुख पर एक विजयोल्लास था। रीता ने देखा और समझ गई। इन्द्रभान विभोर दृष्टि से देख रहा था। मनोरमा उसे देखकर खिलखिलाकर हँसी। रीता ने मुँह चिढ़ाया। मनोरमा शायद फिर सत्यपाल के बारे में सोचने लगी थी। सत्यपाल इस समय उद्भ्रान्त होगा। तभी जीवन ने धीमे से कहा—"मालिक!"

सत्यपाल किसी चिन्ता में था। उसने पूछा—"क्या है?"

जीवन हिचकिचा गया। वह कुछ भी नहीं कह सका। केवल शब्द निकला—"मालिक!" जैसे किसीने उसका सारा साहस छीन लिया था।

सत्यपाल ने रूखेपन से कहा—"मैं नहीं जानता जीवन! मैं नहीं जानता। ऐसा लगता है जैसे सब-कुछ भाग रहा है। मेरी ज़िन्दगी भी एक सुपना है, जिसमें मैं ख़ानाबदोशों की तरह भटक रहा हूँ, भटक रहा हूँ....."

वह एक निस्सीम उलझन में दिखाई देता था।

इन्द्रभान जिस समय आया, सत्यपाल घर पर नहीं था और जीवन बता नहीं सका।

"तो भी तो ?" इन्द्रभान ने पूछा।

"मुझे क्या खबर," जीवन ने कहा—"अब पहले के-से तो वे रहे नहीं, जो मुझसे हर बात में राय लेते।"

"अच्छा !" इन्द्रभान ने कहा—"आपका ख़याल है कि आपका दिमाग़ बहुत तेज़ है ?"

इन्द्रभान को लगा कि वह उस यात्री के समान था, जो स्टेशन पर चाय पीने उतरता है, पर जब तक वह चाय समाप्त करता है, गाड़ी प्लेटफ़ार्म के बाहर जा चुकी होती है। वह सीधा मनोरमा के स्कूल में पहुँचा। ऊपर के कमरे में हल्के झिलमिल रेशमी गाउन में रीता उस समय सीने के नीचे तकिया दबाए पड़ी सिगरेट पी रही थी।

"कौन है ?" उसने बिना मुड़े पूछा।

"आपका गुलाम।" इन्द्रभान ने कहा।

"मैं समझी थी कुत्ता है।" रीता ने मुड़कर कहा।

इन्द्रभान चिढ़ा। उसने तीखी आवाज़ में कहा—"लाहौलबिला-कूवत ! जितना मानता हूँ, उतना ही सिर पर चढ़ती जाती हो।" फिर एकाएक उसका स्वर बदला। आगे बढ़कर उसने रीता के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"तुम्हें मुझ पर कभी रहम नहीं आता।"

रीता मुस्कराई। इन्द्रभान ने कहा—"आज मैं मनोरमा से तुम्हारी शिकायत किये बिना नहीं रहूँगा। मनोरमा....." उसका स्वर उठा—"मिस मनोरमा....."

"किसे बुला रहे हो ?" रीता ने उसका हाथ कन्धे से हटा दिया।

"क्यों ? कहाँ गई ?"

"अभी-अभी सत्यपाल उन्हें ले गए हैं।"

"सच ?" उसे विश्वास नहीं हो रहा था।

"तुम्हारी क़सम," रीता ने कहा।

"मेरी क़सम !" इन्द्रभान फड़क उठा। वह कहता गया—"फिर कहो रीता देवी, फिर कहो। भले ही तुम्हारी क़सम झूठी हो और मेरे मर जाने का ख़तरा हो, पर कितनी मीठी लगती है तुम्हारे मुँह से यह बात ! तुम्हारा मुँह क्या है, कंजूस का बटुआ है ! और एक हमारा सत्यपाल है, दोनों हाथों से उलीचता है—" उसने दोनों हाथों से इशारा किया।

"तो वहीं जाओ न ?" सिगरेट की राख झाड़कर रीता ने कहा।

"अरे वहाँ तो जायँगे ही। चलो न तुम भी ?"

"मैं जाकर वहाँ क्या करूँगी ?"

"ज़रा चली चलेंगी तो मेरे दिल पर ही अहसान हो जायगा।"

इन्द्रभान फ्रेंच तरीके से धरती पर घुटनों के बल बैठ गया था। रीता हँसी। कहा—"तो चलो।"

इन्द्रभान निहाल हो गया।

५

सत्यपाल और मनोरमा ने जब घर में प्रवेश किया, जीवन थर्रा उठा। उसने देखा सत्यपाल के साथ एक नर्त्तकी थी, जो निस्सन्देह सुन्दरी थी। जीवन की समझ में नहीं आया कि वह क्या करे ? किन्तु उसे लगा जैसे उसके सारे स्वप्न आज चूर-चूर हो रहे थे। दीवार की भीतरी ओर बैठा वह अभी तक किसीकी कुदाल चलते सुन रहा था। वह समझा था, शायद चोर चला जायगा। पर उसने देखा कि चोर ने सेंध

में से सिर डालकर देखा और जीवन की इच्छा हुई कि वह ज़ोर से पुकारकर उस चोर को गिरफ़्तार करा दे, किन्तु उसे महसूस हुआ कि वह बँधा हुआ था। जिस सम्पत्ति का वह रक्षक था, वह स्वयं उसका स्वामी नहीं था। वह गम्भीर खड़ा रहा।

जीवन हठात् एक खिलखिलाहट सुनकर चौंक उठा। उसे लगा जो काँच और बिल्लौर के बरतन वह ऊपर सजा आया था, उस कमरे में कोई बैल घुस आया है जो उन्हें सींग मार रहा है और वे सब झनझनाकर टूट रहे हैं। जीवन ने निश्चय किया। वह ऊपर चढ़ा और द्वार पर खड़े होकर उसने कहा—"मालिक!"

सत्यपाल बाहर आ गया। पूछा—"क्या है जीवन?"

"एक बात कहनी है मालिक!" जीवन ने साहस करके इंगित किया। दोनों नीचे उतर आए।

"कहो," सत्यपाल ने कहा।

"कहते हुए डरता हूँ मालिक!"

"क्यों?"

"मैं नौकर हूँ न?"

"नौकर-मालिक का सवाल नहीं है जीवन! तुमने मुझे बचपन से पाला है। तुम्हारा मुझ पर अधिकार है।"

जीवन रो दिया और उसने सत्यपाल के कन्धे पकड़कर कहा—"तो यह क्या कर रहे हो मालिक? अभी तक तुम जो करते थे, बाहर करते थे, घर में कुछ नहीं। सिर्फ तस्वीरें आती थीं, पर अब तो घर में भी....."

उसका गला रुँध गया। सत्यपाल ने हँसकर वाक्य पूरा किया—"एक नाचने वाली आ गई है। जिस दिन चन्दा आई थी, उस दिन तुम हँसे थे। लेकिन नतीजे में क्या हुआ जानते हो? तुम्हें रोना पड़ा। हो सकता है आज जिसके आने पर तुम रोते हो, वह तुम्हें आगे चलकर हँसा सके।"

"यह कैसे हो सकता है मालिक? वह आपके पैसे की भूखी है," बूढ़े

ने रुँधे स्वर से कहा, "उसे आप नहीं, दौलत चाहिए। यह आप क्या कर रहे हैं?"

"बहुत बार आदमी समझता है, वह ठीक कर रहा है, पर वह गलत हो जाता है। आज शायद मैं गलत ही कर रहा हूँ, पर मैं अपनी आज़ादी में कोई ख़लल नहीं सह सकता।"

"आजादी!" जीवन ने कहा, "आजादी का यह मतलब तो नहीं कि अपना सिर है उसे मैं दीवार से टकराकर तोड़ दूँगा, अपने पाँव हैं उन्हें मैं ऐसी दलदल में जाकर फँसाऊँगा जहाँ से वे कभी भी बाहर न निकल सकें? मैं ख़ानदान की इज़्ज़त की बात करता हूँ मालिक! इन्सान को याद रखना चाहिए कि वह दुनिया की आखिरी पीढ़ी नहीं है। उसके काम अच्छे हैं या बुरे, इसका फैसला उसकी अपनी आने वाली औलादें करती हैं।"

सत्यपाल ने मुस्कराकर कहा—"मैं किसीसे नहीं डरता। मैं आन का पक्का हूँ, यही मैं अपने बारे में हमेशा सोचता हूँ। कहाँ तक आगे जा सकता हूँ, कह नहीं सकता। जानते हो जीवन? मैं इस औरत से शादी तक कर सकता हूँ।"

जीवन के मुँह से एक हल्की चीख़ निकली—"मालिक!"

सत्यपाल के मुख पर कोमलता आ गई। पूछा—"क्यों? छोड़कर चले जाओगे मुझे?"

जीवन की आँखें भर आई थीं। उसने सिर हिलाया। कितना न कह दिया उसने एक दृष्टि में! वह क्या कभी छोड़कर जा सकता है? क्यों सोच रहा है सत्यपाल यह? सत्यपाल देखता रहा। जीवन चला गया। सत्यपाल ने मुड़कर सीढ़ी पर पाँव रखा पर सामने ही मनोरमा छिपी बैठी थी। सत्यपाल को देखकर वह मुस्करा उठी। कहा—"बुरा तो न मानोगे? पर मैं तुम्हारी बातें सुन चुकी हूँ।"

"अच्छा!" सत्यपाल ने सिगरेट सुलगाई। केवल एक भावहीन शब्द।

"सच कहूँ ?" मनोरमा ने पूछा।

"अभी तक क्या झूठ कहती थीं ?"

"झूठ नहीं तो वह सच भी नहीं था। मैं सचमुच तुम्हारी दौलत के लिए आई थी, लेकिन....."

सत्यपाल ने निर्विकार वाक्य पूरा किया—"अब तुम मेरे लिए आई हो।"

"तुम आदमी नहीं हो", मनोरमा ने कहा—"देवता हो। मैं तुमसे शादी करके जो सुख पा सकती हूँ, वह मुझे कहीं नहीं मिल सकता।"

सत्यपाल हँसा। वह आगे बढ़ा। उसने तिजौरी खोलकर कहा—"यह देखो।"

मनोरमा अपमानित नहीं हुई। उसके नेत्रों में आदर था। उसने कहा—"तुम इस सबसे बड़े हो।"

"ठहरो," सत्यपाल ने टोककर कहा, "मेरी शक्ल देखी है ?"

"मैंने तुम्हारा दिल देखा है।"

"वह तो एक दिन चन्दा ने भी देखा था। इन्सान जोश में आकर ऐसी बातें कर जाता है जो जुनून उतरने पर उस में बाकी नहीं रहतीं, वह उन्हें भूल जाता है।"

और मनोरमा ने इसका उत्तर दिया—"मैं तुमसे प्रेम करती हूँ सत्यपाल !"

सत्यपाल हँसा। वह हास्य कटु था, पर तिक्त नहीं। "लेकिन," उसने कहा, "मैं नहीं जानता कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ या नहीं। एक बात पूछूँ ?"

मनोरमा चुप रही। सत्यपाल कहता रहा—"यदि मैं तुमसे प्रेम न करूँ और तुम्हारे सामने किसी अन्य स्त्री से प्रेम करूँ तो ?"

मनोरमा मुस्कराई। कहा—"मैं एक नाचने वाली औरत हूँ। दुनिया मुझ पर विश्वास नहीं करती। लेकिन जब मेरा दिल बदलता है तो वह फिर बार-बार नहीं बदलता। अगर तुम मेरे न होगे तो....."

सत्यपाल की भौं उठीं। हठात् किसी ने पुकारा—"मालिक! मालिक!"

वह जीवन था जिसके हाथ में एक पत्र था। उसके पीछे ही इन्द्र-भान और रीता थे।

"क्या हुआ जीवन?" सत्यपाल ने पूछा।

"मालिक, डाकिया ख़त दे गया है।"

पत्र पढ़कर सत्यपाल एक बार भयानकता से हँसा।

"क्या लिखा है मालिक?" जीवन काँप उठा।

"तेरी मालकिन का ख़त है।"

"मालकिन का!"

"हाँ जीवन! उसने लिखा है कि वह बहुत बीमार है। मौत के बिस्तर पर पड़ी है। वह पापिनी है। मरने से पहले अपना पाप मेरे सामने स्वीकार करके वह अपनी आत्मा को हल्का कर लेना चाहती है।"

"मालिक....." जीवन ने फिर कहा। किन्तु सत्यपाल ने मुड़कर कहा—"चलोगी मनोरमा? मैं उसे देखना चाहता हूँ, मैं उसे देखना चाहता हूँ।" उसे आवेश आ गया था। उसने फिर कहा—"जीवन! मैं अभी जाऊँगा, अभी जाऊँगा।"

वृद्ध अभी परिस्थिति को समझ नहीं पाया था। उसने कहा—"जाओ मालिक! मरती बेला कुछ ऐसा न कहना जो उन्हें तकलीफ़ दे।"

"जानता हूँ," सत्यपाल ने दृढ़ता से कहा, "जीवन! अगर वह सुखी होती तो शायद मैं न जाता, पर आज वह दुख में है। उसे शायद मेरी ज़रूरत पड़ी है। स्त्री जब निस्सहाय हो जाती है तब पुरुष के अतिरिक्त उसका सम्बल और कोई नहीं होता।"

मनोरमा के होंठ व्यंग्य से काँप उठे। वह बहुत धीरे से फुसफुसाई—"पुरुष?" किन्तु कोई सुन नहीं सका।

६

मोटर तेज़ी से जा रही थी। सत्यपाल ड्राइव कर रहा था। मनोरमा बगल में थी। इन्द्रभान और रीता पीछे बैठे थे। कार की गत इतनी उलझन से भरी थी कि किसीको भी याद नहीं कि पथ में क्या-क्या देखा।

वह एक छोटा कस्बा था जिसके एक घर के सामने वे रुके। जिससे उन्होंने उतरकर पूछा वह एक बूढ़ा आदमी था।

इन्द्रभान ने पूछा—"यहाँ कोई चन्दा नाम की औरत रहती थी?"

वृद्ध ने पहले धुँधली आँखों से देखने का यत्न किया। और फिर जैसे उसने अपने-आपसे कहा—"बहुत अच्छी औरत थी। ग़रीबों पर बड़ी दया करती थी। उसके साथ एक आदमी था, जो उसे बहुत मारता था। सब-कुछ सहती थी पर अपने पर ही रोकर रह जाती थी। उसका आदमी बड़ा ज़ालिम था। उसीके सामने घर में बाज़ारू औरतें ले आता था।"

इन्द्रभान सकपका गया। उसने पूछा—"वह कहाँ गया?"

वृद्ध ने हाथ फैलाकर कहा—"जब सब रुपया खर्च हो गया तो छोड़कर भाग गया।"

सत्यपाल मुस्कराया। उसने कहा—"बहुत अच्छी थी! कोई नहीं जानता एक ही इन्सान कहाँ अच्छा और कहाँ बुरा बन जाता है। मैं भी उसे बहुत अच्छा समझता था।"

बूढ़े ने फिर कहा—"जब तक रही तब तक वह दूसरों के दुख को देखकर रोया करती थी।"

"थी?" सत्यपाल ने चौंककर कहा—"तो क्या अब नहीं है?"

"नहीं बाबू," बूढ़े ने हारे हुए स्वर से कहा, "दो घण्टे हुए लोग उसे मरघट ले गए। न जाने उसे क्या दुख था। मरते वक्त तक चिल्लाती

रही—'मुझे माफ़ करो, मैं पापिन हूँ, मैं पापिन हूँ।' ऐसी देवी भी कोई पाप कर सकती है, सोचना भी कठिन है।"

"पापिन तो थी ही," इन्द्रभान ने काटा, "जो अपने पति को छोड़ आई, वह उसकी भी न बन सकी।"

उसने गर्व से सत्यपाल की ओर देखा, परन्तु वह सत्यपाल की बात सुनकर ठिठक गया—"उसका पति ही उसका कब बन सका इन्द्रभान? उसने भी तो उससे नहीं निभाई।"

मनोरमा को बिजली का तार छू गया। रीता सहम गई।

"चलो," सत्यपाल ने मोटर का दरवाज़ा खोलकर सीट पर बैठते हुए कहा।

श्मशान में अनेक चिताएँ जल रही थीं। लोग वापस जा रहे थे, उजड़े हुए। वे सब यह सोच रहे हैं कि मृत्यु भयानक है, वही सबका अन्त है। किन्तु जीवन इतना सुन्दर है कि वह मृत्यु को बार-बार भुला देता है। जीवन की जीत है कि मनुष्य कभी मृत्यु के लिए नहीं जिया।

सत्यपाल चिता को एकटक देख रहा था, मनोरमा खड़ी थी और समझ नहीं पा रही थी कि वह क्या कहे।

"इन्द्रभान," सत्यपाल के मुँह से जैसे यह एक अभिव्यक्ति अनजाने ही फिसल गई।

"जी," उसने झुककर कहा।

"तुम्हें याद है, चन्दा कितनी कोमल थी। लेकिन यह आग कुछ नहीं देखती।"

"दुख न करें मालिक," इन्द्रभान ने दुखी होकर कहा, "एक दिन सबको यही दिन देखना पड़ता है।"

"अच्छा," सत्यपाल ने मुस्कराकर कहा, "तो तुम फ़िलासफ़र भी हो।" उसके होठों पर व्यंग्य था। वह जैसे अपने-आपसे कहने लगा—"चन्दा ने मेरी प्रतीक्षा भी नहीं की इन्द्रभान! मौत किसीकी नहीं सुनती।

हर जीवित मनुष्य समझता है कि वह संसार का केन्द्र है, पर जब वह मर जाता है तब उसकी भी एक याद-भर बच रहती है।"

और उसने मुड़कर उठते हुए मनोरमा से कहा—"तुम मुझसे शादी करना चाहती हो न?"

मनोरमा थर्रा गई। एक स्त्री की चिता जल रही थी और पुरुष दूसरी स्त्री से पूछ रहा था। मनोरमा अनबूझ-सी उसका मुँह देखने लगी। सत्यपाल ने कहा—"जानती हो? अपना ठिकाना छोड़ने पर औरत का क्या होता है?" फिर जैसे उसे उत्तर की भी कोई आवश्यकता नहीं थी। वह दूसरी ओर मुख करके अपने-आप कह उठा—"पत्थर अपनी जगह पर ही भारी होता है, जब वह लुढ़कता है तब बिसने लगता है।"

मनोरमा ने भयाच्छादित दृष्टि से इन्द्रभान को देखा। वह समझा। कहा—"चलिए! अब क्या है?"

"ठहरो! इन्द्रभान!" सत्यपाल ने ध्यानस्थ-से स्वर में कहा—"देखते हो? मौत के बाद ये आग की लपटें किस बेदर्दी से इन्सान को जलाती हैं। लेकिन ये लपटें क्या जानें कि जब इन्सान ज़िन्दा होता है, वह इससे भी बड़ी बेदर्दी से जला करता है।"

"अब तो आग बुझने लगी है।"

सत्यपाल ने मुड़कर देखा। मनोरमा बोल उठी थी। उसने धीमे से उसे उत्तर दिया—"कुछ देर में यहाँ सिर्फ़ ख़ाक रह जायगी।"

तीसरे दिन सत्यपाल ने जिस स्नेह से फूल बटोरे, मनोरमा को धक्का-सा लगा। शायद वह और चौंकती यदि वह जान लेती कि फूल बटोरते समय सत्यपाल की आँख में एक बूँद आँसू आया था जो उसने उससे छिपाकर पोंछ लिया था। उसने तो यही देखा कि उसी निर्मम रूप में सत्यपाल ने खड़े होकर कहा—"चलो इन्द्रभान! चलें। अब यहाँ कुछ नहीं रहा।"

७

गाँव वालों के नाच को देखकर सत्यपाल ने गाड़ी पहाड़ी रास्ते पर रोक दी। सूखे पहाड़ पर कहीं-कहीं झाड़ियाँ थीं, वरना नितान्त ऊबड़खाबड़ पत्थरों का ढेर उठता चला गया था। सत्यपाल ने दूर देखकर कहा—"वहाँ कोई नदी मालूम पड़ती है।"

"बरसात आ गई है," रीता ने कहा, "शायद वहाँ कोई गाँव है।"

"चलो इन्द्रभान," सत्यपाल ने कहा, "वहीं चलें।"

मनोरमा प्रफुल्लित हुई। उसे लगा, जिस पेड़ के सब पत्ते गिर गए थे, उसमें फिर एक छोटी पत्ती निकली थी। "कितनी सुन्दर जगह है!" उसने मुग्ध होकर कहा—"कुछ दिन यहीं रहना चाहिए।"

"तुम्हें यहाँ रहना अच्छा लगेगा?" सत्यपाल ने पूछा।

"क्यों नहीं? यह पहाड़, यह नदी, सब-कुछ कितना सुन्दर है!"

"तो चलो इन्द्रभान, यहाँ ठहरने का इन्तज़ाम करो।"

"बहुत अच्छा मालिक," इन्द्रभान ने रीता के हाथ को दबाया—"चलिए।"

और सत्यपाल ने कहा—"मुझे चन्दा के फूल भी नदी में विसर्जित करने हैं।"

मनोरमा को लगा जैसे किसीने उसके सिर पर हथौड़े की चोट की। भयानक था यह आघात। उसे चिता की लपटों से जली हुई उस स्त्री से एक प्रतिस्पर्धा-सी हुई। स्त्री ने एक-एक करके अपने बहुत से अधिकार इसीलिए खो दिए कि वह पुरुष पर अपना एकाधिपत्य चाहती रही है। इसमें वह उतनी ही स्वार्थी है जितना पुरुष, जो नारी पर पूर्ण अधिकार चाहता है। परस्पर स्नेह नहीं, जैसे द्वन्द्व है। जैसे एक मजबूरी है कि हम-तुम एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते, परन्तु निरन्तर जैसे दोनों अविश्वास की ज्वाला में जलते हुए प्रतिहिंसा-सी किया करते हैं।

सत्यपाल का गाम्भीर्य उसे चिढ़ाने में ही समर्थ न था बल्कि डराने लगा था। उसकी माथे की हड्डी उसे पत्थर की दिखाई दी। सम्भवतः उसके पीछे विचार रूपी कोई सिंह था या भेड़िया। क्या था वह इतना भयानक ? मनोरमा समझ नहीं पाई। ऊपर से शान्त, भीतर से इतना आसक्त; पर उस आसक्ति की चेष्टाएँ निरासक्ति बनकर प्रगट होती हैं। प्रेम के लिए प्यासा हृदय उच्छ्वास भरता है तो घृणा की-सी ऊष्मा निकलती है।

मनोरमा सोचती रही।

खेमे नदी के पास लग गए। पास ही अमराई थी।

"मनोरमा !" सत्यपाल ने नदी में फूल डालते हुए कहा—"देखती हो ?"

मनोरमा ने भौं उठाई।

"कैसा भी घमण्ड हो," वह कहता गया—"इन्सान की हड्डियाँ यही चाहती हैं कि जब आग उन्हें तपा चुके तो किसी अपने प्रिय का हाथ ही उन्हें लहरों में बहा दे।"

मनोरमा कुछ नहीं बोली। सत्यपाल ने फिर कहा—"सुनती हो ?"

"तुम बहुत सोचते हो।" मनोरमा ने कहा—"इधर-उधर की बातों में मन लगाने की कोशिश करो।"

सत्यपाल हँसा। "ठीक कहती हो," उसने कहा, "इन्सान मरे को नहीं रोता, अपने सुख-दुख और अपनी यादों को रोता है।"

इस अमराई में से खिलखिलाकर हँसने की आवाज आई। दोनों ने चौंककर देखा। एक लड़का और एक लड़की। वही प्रत्येक जीवन के प्रारम्भ का स्वप्न ! प्रत्येक शीशे के टूटने से पहले की चमक ! देखते-ही-देखते वे दोनों चले गए। सत्यपाल ने बहुत ही धीरे से कहा—"ज़िन्दगी ! फानूस की तरह धूप में सतरंगी दिखाई देती है, मगर स्वयं जैसे काँच, टूट गई तो जुड़ती नहीं, जैसे सिर्फ़ एक बार का खेल है।"

"क्या हम वैसे नहीं हो सकते ?" मनोरमा ने पूछा।

"पहली बार के नशे की मस्ती बार-बार नहीं आती।" सत्यपाल ने दूर देखते हुए ही कहा—"फिर वह भी एक आदत बन जाती है। वह नहीं जानते कि जब नशा उतरता है तब तबियत कितनी उचाट खाती है।"

"फूल हर बार एक नई खुशबू लेकर पैदा होते हैं," मनोरमा ने एकदम बात बदल दी, "चलो सत्यपाल, चलें।"

सत्यपाल उत्तर नहीं दे सका।

८

खेमे के बाहर रीता कुर्सी के हत्थे पर बैठी थी और कैन्वस की कुर्सियों पर मनोरमा और सत्यपाल। इन्द्रभान रीता से कह रहा था—"देख लीजिए सारी उम्र गुजरी जा ही है। इसे कहते हैं प्रेम। एक आप हैं कि आपको मुझसे प्रेम है....."

रीता ने काटकर कहा—"कौन कह चुकी है? हुँह!"

इन्द्रभान मुसाहिबी के सारे गुण जानता था। प्रभुवर्ग को हँसाना उसका काम था। उसने झुककर कहा—"आप यकीन मानिए। एक बार आप ग़लती से यह कह गई थीं।"

सत्यपाल हँसा। मनोरमा मुस्कराई। सत्यपाल ने कहा—"अच्छा, अब तुम लोग शहर जाओ। जीवन से कह देना, घूमते-घूमते अगर मैं थक गया तो शायद उसीके पास लौट आऊँगा। और हाँ, शिकार का सामान जाते ही भिजवा देना।"

मनोरमा ने बात पकड़ी—"रीता! स्कूल को संभालना।"

"तुम नहीं जाओगी?" सत्यपाल ने पूछा।

मनोरमा का मुख काला पड़ गया। इन्द्रभान ने कनखियों से देखा। रीता कुर्सी के हत्थे को कुरेदने लगी। मनोरमा ने धीमे से कहा—"अगर तुम चाहते हो तो चली जाऊँगी।"

पर वह फिर एकाएक उठी और खेमे में चली गई। सत्यपाल चौंक उठा। उसने पर्दा हटाकर देखा। वह रो रही थी। सत्यपाल लौट आया। उसने जोर से ही कहा—"नहीं इन्द्रभान! मनोरमा यहीं रहेगी।"

इन्द्रभान ने मुस्कराकर कहा—"ज़हे किस्मत रीतादेवी! स्टेशन सिर्फ़ मील-भर है। आपके पाँव में कहीं छाले न पड़ जायँ।"

"आपकी," रीता ने तोड़ किया, "ज़ुबान में भी अब तक नहीं पड़े।"

उनके जाने पर सत्यपाल देर तक कुर्सी पर पड़ा-पड़ा सिगरेटें पीता सोचता रहा। पास के पेड़ पर कोयल बोली। मनोरमा बाहर आई। उसका मुँह अब फिर चमक रहा था।

"क्या सोच रहे हो?" उसने पूछा।

"यही सोचता था कि इन्सान क्या सोचता है और क्या होता है?"

"क्या सोचता है वह और क्या होता है?" मनोरमा कुर्सी पर बैठ गई।

"जब वह आसमान की सोचता है, तब धरती पहाड़ों की तरह ऊँची होकर उसकी आँखों के सामने आने लगती है और जब वह धरती की सोचता है तब आसमान अपने हाथ फैलाकर दूर धरती पर उतरता हुआ दिखाई देता है।"

"मुझे लगता है तुम सदमे को सह नहीं सके हो।"

"तुम समझती हो रो लेने का ही नाम सदमा बरदाश्त करना है।"

"मैं नहीं जानती," मनोरमा ऊब गई। "कहीं घूमने चलो, पड़े-पड़े न जाने क्या सोचते रहोगे?"

"कहाँ चलोगी?" सत्यापाल अन्यमनस्क स्वर में बोला।

अमराई की सुन्दर छाया में किशन हिन्दी की पहली किताब पढ़

रहा था—'अ''''अ''''अ''''से अमरूद''''अ से अमरूद''''आ से आम''''
आ से आम''''

और पेड़ पर लटकते आम पर जो नज़र पड़ी तो किताब का आम पेड़ पर झूलने लगा। वह पढ़ना भूल गया। एकाएक वह सकपकाकर खड़ा हो गया। सामने दो व्यक्ति खड़े थे। एक कोई सुन्दरी और एक रईस। किशन मूर्खता से मुस्कराया।

"इस गाँव में पढ़ने-लिखने का बहुत शौक मालूम देता है," स्त्री ने कहा।

किशन ने सिर हिलाया। कहा—"सरस्वती कहती है कि जब तक इन्सान पढ़-लिखकर अक्लमन्द नहीं बनता, वह बच्चा होता है।"

"ठीक कहती है," पुरुष ने कहा।

मनोरमा ने व्यंग से कहा—"इस गाँव में जब बच्चे इतने बड़े-बड़े होते हैं तो जवान जाने कितने बड़े होते होंगे।"

किशन ने तोते की तरह कहा—"सरस्वती कहती है आदमी को धन, उमर, यह सब बड़ा नहीं बनाते, विद्या बनाती है।"

"सरस्वती समझदार मालूम देती है।" सत्यपाल से मनोरमा यह दूसरा वाक्य सुनकर खीझ उठी। किशन ने सिर हिलाकर कहा—"समझदार तो है ही, नहीं तो क्या मैं उससे''''"

वह ठिठक गया। "कहो, कहो," मनोरमा ने साहस बँधाया।

"सरस्वती डाँटेगी," किशन ने डरते हुए कहा।

"क्यों ?" मनोरमा मुस्कराई—"यहाँ तो वह है नहीं।"

"अब," किशन ने झुँझलाकर कहा, "कहकर भी क्या होगा ? मेरा खेल तो विलास ने बिगाड़ दिया।"

"विलास कौन है ?" मनोरमा ने पूछा।

किशन झेंपा। बोला—"वही जो आपके यह हैं।"

सत्यपाल हँसा। मनोरमा मुस्कराई। सत्यपाल ने कहा—"सरस्वती को हमारे यहाँ ले आओगे ?"

किशन ने निराशा से सिर हिलाकर कहा—"वह नहीं आयेगी।"

सत्यपाल ने पूछा—"अगर हम चलें तो ?" उसके हृदय में गाँव की पढ़ी-लिखी लड़की को देखने की इच्छा जाग उठी थी। मनोरमा ने घृणा से होंठ मोड़ लिए।

सरस्वती खड़ी थी। उसने चौंककर कहा—"तुम शादी से पहले ऐसे घर में कैसे आ घुसते हो ? अब तो काका यहाँ नहीं हैं। कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?"

विलास हँसा। बोल उठा—"अब क्या कहेंगे ? गाँव में सब जानते हैं, शादी होने वाली है।"

बाहर से किशन ने पुकारा—"सरस्वती !"

"किशन ! क्या है ?" सरस्वती ने पूछा।

"देख तो कौन आये हैं ?" उसके स्वर में उत्साह था।

विलास चौंका। कहा—"यह कौन आ गए ?"

सत्यपाल मूँढे पर बैठा। मनोरमा सिरहाने की तरफ खाट पर। विलास खिड़की में, सरस्वती पैताने, किशन खड़ा रहा।

सरस्वती शान्त थी। मनोरमा ने ही सन्नाटा तोड़ा—"बड़ी खुशी हुई यह देखकर कि गाँव में भी कोई ऐसा समझदार हो सकता है।"

सरस्वती मुस्कराई। पूछा—"आप समझी थीं शहर में ही अक्ल ख़त्म हो जाती है ? कोई रुपया रखता है, तो कोई पैसा। सिक्का तो हर जगह चलता है।"

मनोरमा के मुँह पर परेशानी थी। सरस्वती के मुख पर वही सौम्य मुस्कराहट। विलास ने पूछा—"आप लोग गाँव घूमने आये हैं ?"

सरस्वती ने मुस्कराकर पूछा—"आपने सोचा होगा, गाँव बहुत अच्छा होता है ?"

"नहीं होता ?" सत्यपाल ने पूछा।

"नहीं, गरीबी में," सरस्वती कह उठी, "कुछ भी अच्छा नहीं होता। अपनी इज्ज़त महसूस करना भी यहाँ घमण्ड कहलाता है।"

सत्यपाल ने अनुभव किया, लड़की बहुत सोचती है। उसने चमक देखी थी, पॉलिश देखी थी, यह नहीं देखा था। मनोरमा को यह अच्छा नहीं लगा। उसने कहा—"गाँव का आदमी अपढ़ और जाहिल होता है।"

सरस्वती तैयार थी। कहा—"शहर का आदमी फरेबी और चालाक होता है।"

"गाँव का बेवकूफ़," मनोरमा ने फिर काटा, "जब अक्लमन्द बनता है तो उस पर हँसी आती है।"

"शहर का बेईमान, जब भोला बनकर अपनी ज़लालत को शराफ़त के चोग़े में छिपाता है तो उस पर हँसी आती है।"

सत्यपाल ने हँसकर कहा—"शाबाश!"

मनोरमा खीझ उठी। पर सरस्वती ने हँसकर कहा—"आप क्या नम्बर दे रहे हैं?"

"आप पास हो गईं," सत्यपाल ने उठते हुए कहा। मनोरमा भी उठ खड़ी हुई। उसे धक्का लगा था। गाँव की स्त्री में यह अहंकार! सत्यपाल ने कहा—"अच्छा, आप हमारे यहाँ आइएगा न? आप दोनों से मेरी प्रार्थना है।"

"आप ही मेहमान," सरस्वती ने कहा, "और आप ही बनेंगे मेज़बान, पर हम गाँववाले तो नाई का बुलावा भी नहीं टालते।"

सब हँस दिए। उनके जाने पर विलास ने कहा—"क्या कह गई तू? कल वहाँ जायँगे तो सारा गाँव चरचा करेगा।"

"फिर," सरस्वती सोच में पड़ गई। फिर कहा—"मैं कह चुकी हूँ। मैं ज़रूर जाऊँगी।" और जैसे बल प्राप्त किया, "तुम तो मेरे साथ रहोगे।"

६

"ले आए," सत्यपाल ने बन्दूक हाथ में तौलकर कहा। शहर से नौकर शिकार का सामान लाए थे।

"मालिक!" एक नौकर ने कहा—"मनीजर साहब के कहने से जीवन काका ने भिजवाया है।"

"ठीक है, तुम लोग खाना-वाना खाकर जा सकते हो," सत्यपाल ने आज्ञा दी।

"बहुत अच्छा मालिक!" नौकर ने कहा। फिर जैसे याद आ गया, एक पत्र निकालकर बढ़ाते हुए कहा—"हाँ, जीवन काका ने यह चिट्ठी दी है।"

सत्यपाल ने चिट्ठी पढ़ी।

'''''मालिक के चरण छूना। बाद खैरियत के मालूम हो कि आप मेरे ही गाँव में ठहरे हैं। वहाँ सरस्वती नाम की मेरी भतीजी है। उसे बुलवा लें। सब इन्तज़ाम वह विलास से कहकर करा देगी। कोई चिन्ता की बात नहीं है। अपनी इसी बेटी का ब्याह मैं इसी विलास से करने को कहता था आपसे। जोड़ी ठीक है या नहीं?

आपका सेवक—जीवन।'

पत्र पढ़कर सत्यपाल को हल्का-सा चक्कर आया। क्यों? वह स्वयं नहीं समझ सका। उसके मुख से फूटा—"जीवन! यहाँ भी तू!"

फिर एकाएक उसने दियासलाई निकालकर पत्र जला दिया। गम्भीर चिन्ता ने उसे कुर्सी पर गिरा दिया।

कब नौकरों ने पास खड़ी मोटर को साफ़ किया, कब मेज़-कुर्सी लगा दी, उसे नहीं मालूम हुआ। सूरज डूबने लगा। सत्यपाल आसमान की छाया में सिगरेट पीता बैठा रहा।

खेमे के भीतर मनोरमा कपड़े पहन रही थी। उसी समय सरस्वती और विलास आकर सामने ही खड़े हो गए। सरस्वती खद्दर की सफ़ेद साड़ी पहने थी, विलास धोती और कुरता। सत्यपाल का जी कचोट उठा। क्या यह उसके नौकर की भतीजी है? ध्यान आया, उड़ गया। उसने कहा—"आइए, आइए, मैं तो आप ही की प्रतीक्षा कर रहा था। मनोरमा....."

"आई!" आवाज़ आई। उसने देखा वे कुर्सियों पर बैठ रहे थे।

सत्यपाल ने सोचा यदि मनोरमा को पता चले कि यह उसके नौकर की भतीजी है, या स्वयं सरस्वती को जान पड़े तो! क्या वह ऐसे ही बैठी रह सकेगी? उसी समय मनोरमा बाहर आई। उसकी वैभव और दीक्षितज्जा देखकर विलास हक्का-बक्का-सा खड़ा हो गया। मनोरमा ने गर्व से मुस्कराकर कहा—"बैठिए! उठ क्यों पड़े?"

वह बैठा। सरस्वती ने व्यंग से कहा—"गाँव वाले दीपक देखते हैं। बिजली की चमक से आँखें चौंधिया जाती हैं न?"

सत्यपाल ने टोका—"मैं सोचता हूँ अगर आप मनोरमा के कपड़े पहन लें तो कैसी लगेंगी?"

मनोरमा चौंकी। सरस्वती ने और चौंका दिया—"वैसे ही जैसे मनोरमा देवी मेरे कपड़े पहनकर दिखाई देंगी।"

सत्यपाल हँसा। मनोरमा तिलमिला गई। विलास ने दयनीयता से कहा—"हम लोगों के पास ऐसे कपड़े हैं कहाँ?"

मनोरमा ने सरस्वती से मुड़कर कहा—"बुरा न मानें तो एक बार मेरे कपड़े पहनकर देखें न?"

सरस्वती झेंपी। वह कुछ भी नहीं कह सकी।

"छोड़िए भी इन बातों को। रामदीन!" सत्यपाल ने टाला, फिर कहा—"यह आप ही के गाँव से रख लिया है....."

नौकर चाय ले आया।

"चाय आ गई।" सत्यपाल तत्पर हो बैठा।

"मैं यह काढ़ा नहीं पीती," सरस्वती ने कहा।

मनोरमा ने व्यंग्य से मुस्कराकर कहा—"मट्ठा पीती हैं ?"

विलास ज़ोर से हँसा।

जब वे चले तो सत्यपाल ने कहा भी कि बुरा न मानिएगा, पर चले जाने पर उसने मनोरमा से कहा—"तुमने उसका अपमान किया।"

"तुम्हें बहुत खयाल है उसका," मनोरमा ने व्यंग्य से कहा, "वह हमारी नौकरानी होने लायक है।"

सत्यपाल चौंका, "फिर भी वह मेहमान थी। हो सकता है वह नौकरानी बनने लायक ही थी, पर औरत चाहे तो क्या वह पैसा नहीं कमा सकती ? जहाँ पहले ख़ानदान था, आज की दुनिया में वहाँ मर्द की दौलत और औरत की जवानी काम आती है।"

मनोरमा व्यंग्य समझ गई, पी गई। कहा—"तो क्या इसका मतलब है कि वह उन लोगों को नीचा समझे जो उससे ऊँचे हैं ?"

"इसीलिए तो वह," सत्यपाल ने कहा, "ऊँची है कि वह दूसरों को ऊँचा नहीं समझती।"

"देखती हूँ तुम उसकी बड़ी तरफ़दारी ले रहे हो ?"

"जो मुझे अच्छा लगता है उसकी मैं हमेशा तारीफ़ करता हूँ।"

मनोरमा ने उठकर कहा—"मर्द की बात का क्या भरोसा ?"

"यही मैं सोचता था," सत्यपाल कहता गया, "कि विलास सरस्वती के मुकाबले में दिमागी तौर पर कितना कच्चा है !"

"मर्द को अगर प्यार करना आता तो शायद दुनिया बहुत अच्छी होती।"

"और औरत को आता है प्यार करना ?"

"आता है।" मनोरमा की जीभ रुक गई।

"दूध का जला छाछ को फूँक-फूँककर पीता है, मनोरमा !"

"क्या मतलब ?" मनोरमा ने मुड़कर कहा।

सत्यपाल ने उतरते अन्धकार को देखकर कहा—"मैं जो चाहता हूँ वही करता हूँ।"

"तुम क्या करना चाहते हो?" वह जैसे समझ लेना चाहती थी।

"नहीं जानता," सत्यपाल जैसे सुन नहीं रहा था। वह किसी और ध्यान में था।

"और मैं क्या करूँगी फिर?" मनोरमा ने फिर पूछा। सत्यपाल ने कुछ नहीं कहा। मनोरमा ने ही फिर कहा—"शहर चलो। रीता मेरी राह देख रही होगी।"

सत्यपाल ने धीरे से पूछा—"जाना चाहती हो?"

मनोरमा अपमानित-सी भीतर चली गई। शायद वह भीतर रोई भी थी। पर सत्यपाल उठकर नहीं गया।

१०

सत्यपाल के शहर के मकान में सोफ़ा पर पैर फैलाकर रीता ने कहा—"मनोरमा तो गई। अब स्कूल तो मेरा ही हो जायगा।"

"और फिर तुम मेरी हो जाना।" इन्द्रभान ने सिगरेट सुलगाकर कहा।

"क्या कहने हैं!"

"ऐसी अजीब बात है गोया यह। आपके लिए तो दोज़ख़ से शैतान उतरकर आएगा!"

रीता ने इन्द्रभान को घूरकर मुस्कराकर कहा—"उसीसे तो

डर रही हूँ !"

बाहर कुछ आहट सुनाई दी।

"कौन है ?" रीता ने पुकारा।

कोई नहीं बोला।

"कौन है भाई ?" इन्द्रभान ने पूछा।

भीतर एक बीमार-सा व्यक्ति घुस आया। इन्द्रभान ने उठते हुए कहा—"अरे हरीश बाबू ! आप विलायत नहीं गये ?"

कहते-कहते वह रुक गया। हरीश बहुत फटेहाल और बीमार-सा दिखाई देता था।

"यह तुम्हारा हाल क्या है ?" इन्द्रभान ने डरते हुए पूछा।

आगंतुक ने जैसे कोई बात ही नहीं सुनी। उसने धीरे-धीरे कहा—"कस्बे से मालूम हुआ कि तुम लोग वहाँ चन्दा को जलाने गये थे। वहाँ से सीधा यहीं आ गया हूँ। सत्यपाल कहाँ है ?"

इन्द्रभान ने आश्चर्य से देखा। रीता ने कहा—"गाँव गये हैं।"

"तुम कौन हो ?" हरीश ने काटकर कहा।

रीता सकपका गई। इन्द्रभान ने जल्दी से कहा—"मेरी वह···· वह···याने···अरे भाई···तुम्हारे यहाँ क्या कहते हैं···तुम्हारे छोटे भाई की बीबी···याने मेरी···"

रीता ने कहा—"क्या कहा···"

पर इन्द्रभान हरीश से कहता रहा—"बड़ी मज़ाकिया औरत है। हाँ, तुम कहो। कुछ बीमार हो ?"

हरीश ने जैसे कुछ नहीं सुना था। उसने धीरे से कहा—"बीमार ? जानते हो चन्दा देवी थी। वह सचमुच मर गई।"

इन्द्रभान चौंक उठा। उसने कहा—"क्या मतलब ?"

हरीश ने अपना हाथ बढ़ाया और उसी स्थल पर हाथ फेरा जहाँ एक दिन चन्दा का आँसू गिरा था। उसने कहा—"देखते हो न यह जगह ? यहाँ बड़ी जलन होती है। ऐसा लगता है जैसे किसी ने

अंगारा रख दिया हो, बड़ी आग लगती है।"

वह कराह उठा। इन्द्रभान ने आश्चर्य से पूछा—"आखिर क्यों? यहाँ तो कुछ नहीं है। तुम इतने बीमार क्यों हो? किसी डॉक्टर को दिखाया तुमने?"

हरीश ने निराशा से सिर हिलाया, "किसीको नहीं दिखाया, न दिखाऊँगा ही। डॉक्टर मेरा इलाज नहीं कर सकते। जब कभी अकेले में बैठता हूँ तो ऐसा लगता है जैसे एक आँसू मेरे हाथ पर गिरा....."

वह अपनी बात पूरी न कर सका। भयानक दर्द से चिल्ला उठा। दोनों घबरा गए। फिर जैसे वह शान्त हो गया। "पानी," उसने गरगराती आवाज़ में कहा, "पानी।"

डरी हुई रीता ने उसे एक गिलास में पानी लाकर दिया। हरीश ने धीरे-धीरे पिया। लगा, वह अब स्वस्थ था। उसने फिर कहा—"पहले यहाँ जीवन था?"

"कहीं बाज़ार गया है," इन्द्रभान ने कहा। वह समझ नहीं पा रहा था।

और तभी हरीश ने बड़ी दयनीयता से कहा—"बता दो, मुझे सत्यपाल का पता बता दो। मुझे ऐसा लगता है, जब तक वह मेरा इन्तज़ाम नहीं करेगा, मेरा यह हाथ इसी तरह जलता रहेगा।"

इन्द्रभान और रीता ने एक-दूसरे को देखा। रीता ने कहा—"उनकी तो शादी होनेवाली है....."

"किससे?" हरीश ने पूछा।

"एक मेरी दोस्त है मनोरमा....." रीता ने कहा। पर हरीश ने हँसकर कहा—"अरे वह मनोरमा! वही डान्सिंग स्कूल वाली? नहीं, नहीं, हरीश सत्यपाल की ज़िन्दगी को फिर नहीं बिगड़ने देगा। बताओ इन्द्रभान....."

इन्द्रभान ने सकपकाकर कहा—"ठीक पता तो मालूम नहीं। जीवन को मालूम है।"

हरीश उठ गया। "अच्छा अब जाता हूँ, फिर आऊँगा।"

अचानक उसकी दृष्टि अपने हाथ पर गई। वह फिर भयानकता से चिल्लाया और चला गया। उसके जाने पर दोनों ने एक-दूसरे को देखा।

रीता ने पूछा—"यह कौन है?"

"सत्यपाल का एक पुराना दोस्त।"

"खतरनाक लगता है। इसे बीमारी तो कोई नहीं लगती। किसी वहम ने इसे पकड़ लिया है।"

"अजी यह बड़ा हज़रत है।"

"कहीं यह मनोरमा और सत्यपाल की शादी में अड़ंगा न डाल दे। हमारा काम बिगड़ जायगा।"

इन्द्रभान पुकार उठा—"हमारा !! मेरी रीता····"

वह घुटनों के बल बैठकर उसका हाथ चूम उठा, जैसे विभोर था। वह मुस्कराई। कहा—"उठो। एक काम करो। सत्यपाल को ख़त डाल दो कि दोनों जल्दी शादी कर डालें।"

"फिर क्या होगा?" इन्द्रभान ने पूछा।

"फिर क्या है? हमारे-तुम्हारे ठाठ होंगे।"

"ठाठ? हमारे-तुम्हारे····सोच लो बीबी, सोच लो। कहीं किसी पड़ोसी का ज़िक्र तो नहीं कर रही हो?"

"चलो, पहले ख़त लिख दो।"

"पहले खुशी तो मना लेने दो।"

परन्तु रीता उठ खड़ी हुई। इन्द्रभान अँग्रेजी नाच नाचने लगा।

११

नदी पर नाव में सत्यपाल को एकटक देखती मनोरमा पतवार चला रही थी। सत्यपाल डाँड चलाता था, पर उसके नेत्र दूर अमराई पर लगे थे। अचानक ही उसने कहा—"वह देखो।"

"क्या देखना है उसमें!" मनोरमा ने खीझकर कहा—"रोज़ ही तो देखते हो।"

"ऐसी लड़की मैंने आज तक नहीं देखी।" सत्यपाल ने नाव किनारे की ओर मोड़ दी। दोनों उतरे। सरस्वती ने चौंककर कहा—"ओह आप हैं!"

सत्यपाल क्षण-भर चुप रहा, फिर उसने धीरे से कहा—"आपको देखकर मुझे लगा जैसे यह नदी सोचते-सोचते सो गई हो।"

मनोरमा हँस दी। सत्यपाल ने ऐसे देखा जैसे प्रश्न किया। मनोरमा ने आँखें फिराकर कहा—"देख रही हो? आज न जाने क्यों तुम्हें देखकर लगा, यह पहाड़ जैसे जाग पड़ा।"

सरस्वती ने देखा। मनोरमा ने पूछा—"आप तैरती नहीं?"

"मुझे बरसाती पानी में तैरना नहीं आता।"

"तैरने वाले डूबते भी तो हैं।"

"सो तो कभी-कभी नाव भी उलट जाती है।"

सत्यपाल ने प्रसन्नता से कहा—"जब गर्दन तक पानी आ जाता है तब डूब जाने की इच्छा बढ़ जाती है।"

मनोरमा ने फिर कहा—"तब दुनिया कहती है, तिनके का भी सहारा बहुत होता है।"

सत्यपाल ने मनोरमा को देखकर कहा—"मैं किसीकी आजादी में खलल नहीं डालता। मुझे तो किनारा भी मँझधार दिखाई देता है।"

सरस्वती समझी नहीं। कहा—"मैं जाती हूँ।"

मनोरमा ने पूछा—"क्यों ?"

विलास आ रहा था। मनोरमा कहती गई—"आप क्यों जाती हैं ? जब मन का मीत आता है तब क्या कोई जाने की बात करता है ?"

सरस्वती कुण्ठित हुई। कहा—"शहर के लोग चालाक ही नहीं, ख़तरनाक भी होते हैं।"

मनोरमा ने व्यंग्य कसा—"गाँव की चिड़िया शहर में अच्छी क़ीमत पर बिक जाती है। शहर का आदमी शिकारी होता है, जानती हो न ?"

सरस्वती चली गई। सत्यपाल ने घूरकर कहा—"मनोरमा !"

मनोरमा ने अत्यन्त भोलेपन से पूछा—"क्यों ?"

सत्यपाल चला गया। विलास पास आ गया था। उसने पूछा—"क्या बात है ?"

मनोरमा ने उसे कुटिल दृष्टि से देखकर कहा—"कुछ लोग सुपना देखते-देखते नींद ही में चल पड़ते हैं।"

"मैं नहीं समझा," विलास ने याचना की।

"तुम समझोगे भी नहीं।" उसके स्वर में विजय थी। "गाँव के आदमी हो न ? तुम्हें आदमी बनने के लिए शहर में तीन साल रहना लाज़मी है।"

विलास देखता ही रह गया। मनोरमा चली गई थी।

जब वह ख़ेमे में पहुँची, सत्यपाल तभी आया था।

"शहर कब चलोगे ?" मनोरमा ने पूछा।

"क्यों ?"

"गाँव में तबियत बहलाने आये थे, बहल चुकी।"

"इतनी जल्दी ?"

"क्यों ? अभी तुम्हें कुछ काम है ?" मनोरमा भीतर चली गई।

सत्यपाल कुर्सी पर बैठकर सिगरेट जलाने लगा। नौकर पत्र लाया। सत्यपाल ने पढ़ा—"....यहाँ सब ठीक है, आपकी शादी का इन्त-

ज़ार है—इन्द्रभान।'

सत्यपाल शादी शब्द पर हँस दिया। रात हो गई। मनोरमा सो गई। सत्यपाल फिर भी बैठा रहा, सिगरेट पीता रहा। मनोरमा जागी। पूछा—"सोये नहीं ?"

"नींद नहीं आती।"

वह बैठ गई। कहा—"किसने छीन ली है तुम्हारी नींद ?"

सत्यपाल कुछ नहीं बोला। मनोरमा ने फिर पूछा—"सरस्वती तुम्हें सचमुच बहुत अच्छी लगती है ?"

"तुम्हें नहीं लगती ?" सत्यपाल ने प्रश्न के उत्तर के रूप में प्रश्न किया।

"जानते हो औरत को औरत तब अच्छी लगती है जब वह उसकी कोई चीज़ नहीं छीनती।"

"तुम्हारा उसने क्या छीना है ?" सत्यपाल ने तुम्हारा पर ज़ोर दिया।

"वह तुमको छीन रही है मुझसे," मनोरमा फूट पड़ी। "सब-कुछ हो सकता है सत्यपाल, लेकिन यह कभी नहीं हो सकता। मैं सब-कुछ सह सकती हूँ, पर यह नहीं सह सकती। उसका घमण्ड तोड़ने के लिए मैं सब-कुछ कर सकती हूँ।" और फिर उसने दाँत भींचकर कहा—"औरत जब इन्तक़ाम लेती है तब नागिन से भी ज़हरीली साबित होती है।"

सत्यपाल हँसा। उसने कहा—"सो जाओ मनोरमा, सो जाओ।"

मनोरमा का गला रुँध गया। वह उसे कुछ भी नहीं समझता, जैसे वह एक मूर्ख स्त्री है। किन्तु सत्यपाल शान्त बैठा था। मनोरमा को लगा वह किसी ऐसे आदमी के पास बैठी थी, जो उससे बहुत पास होकर भी बहुत दूर था, बहुत दूर था।

आकाश से ओस गिर-गिरकर बाहर पत्तों पर जमा हो रही थी। आज दिन-भर बादल रहे थे। सांझ से आकाश स्वच्छ हो गया था। इन कुछ दिनों में ही पहाड़ पर हरियाली छा गई थी। कैसा अद्भुत था!

पत्थर भी इतनी जल्दी रंग बदलता है ? वह ऊपर ही तो पत्थर-सा लगता है। नीचे तो उसमें मिट्टी है, बड़ा ऊबड़खाबड़ है।

सत्यपाल अब भी बैठा था। मनोरमा उसे देखती रही। फिर उसने एक जमुहाई ली। दूर कहीं पंछी बोला, फिर नदी की फुंकार सुनाई दी, फिर रात में हवा खड़खड़ाई, हरहराई। अंधेरा काँपा। धरती पर एक सुनसान अचेतनता छा गई थी। सत्यपाल बैठा था। शायद वह कुछ सोच रहा था। मनोरमा ने तकिया ठोड़ी के नीचे दबा लिया।

भोर हो गई। सरस्वती जब घर लौट रही थी, सत्यपाल बन्दूक लेकर शिकार पर निकल गया था। मनोरमा ख़ेमे के बाहर आकर टहलने लगी।

"सुनिए !" सुनकर विलास ठहर गया।

"कहिए।" वह निकट आ गया।

"आपकी सरस्वती से शादी हो गई है ?" मनोरमा ने पूछा।

"क्यों ?" विलास ने पूछा—"होने वाली है।"

"शायद अब न हो।" मनोरमा को विश्वास नहीं हुआ, पर वह कह चुकी थी।

विलास ने चौंककर पूछा—"आप कैसे जानती हैं ?" उसने हाथ बढ़ाकर कहा—"आप हाथ देखना जानती हैं ?"

"हाथ भी देखती हूँ, आँखें भी।" वह मुस्कराई।

विलास ने कहा—"आपके वे कहाँ हैं ?"

"पता नहीं," मनोरमा ने लापरवाही से कहा। फिर जैसे याद आया—"कहीं सरस्वती के साथ गये हैं।" फिर जोड़ा, "शायद।"

"सरस्वती के साथ !" विलास का हृदय विद्रोह कर उठा।

"क्यों ?" मनोरमा हँसी।

"यह कैसे हो सकता है ?" विलास ने फिर पूछा।

"शायद न गये हों।" मनोरमा ने कहा, जैसे यह भी कोई बात न थी।

विलास के हृदय में शंका ने पर फैलाये। कहा—"अच्छा, मैं चलूँ।"

मनोरमा ने सिर हिलाया जैसे अच्छा। वह चला गया। तब उसने विजय से मुस्कराकर कहा—"देखना है। सरस्वती! तू? सत्यपाल! तुम? मेरे रहते हुए?" उसका मुख घृणा से विकृत हो गया था।

परन्तु उसकी कल्पना ठीक थी। सरस्वती घर में घुस रही थी, द्वार पर ही सत्यपाल ने उसे टोक दिया—"मैं आपके ही पास आया था।"

सरस्वती सकपकाई। पूछा—"कहिए, कोई काम था?"

"काम तो नहीं," सत्यपाल ने कहा। फिर उसे ध्यान आया—"अरे आप रुक क्यों गईं? अच्छा मैं समझ गया। कहीं भीतर जायँगी तो मुझे भी बुलाना न पड़ जाय। बाहर ही से टाल दिया जाय तो बेहतर है।"

सरस्वती मुस्कराई। कहा—"आइए! हम मेहमान की कभी बेइज़्ज़ती नहीं करते।"

गाँव के दो-तीन व्यक्तियों ने देखा। उनका माथा रेखाओं से भर गया। पर द्वार खुला था। कमरे में सत्यपाल मूँढे पर बैठा। सरस्वती खड़ी रही।

सत्यपाल ने कहा—"मैं आपसे माफ़ी चाहता हूँ।"

"किसलिए?" सरस्वती को आश्चर्य हुआ।

"मनोरमा ने आपको कुछ ऐसी बातें कहीं....." वह रुका। फिर कहा—"आप सधी हुई अक्ल की बात करती हैं, मनोरमा शक्ल पर ख़त्म हो जाती है।"

सरस्वती को अच्छा लगा। बोली—"जिसके पास जो होता है वह उसीकी नुमायश किया करता है। पर आपकी पत्नी....."

"यह आपसे किसने कहा कि वे मेरी पत्नी हैं? मैं अलग रहता हूँ। आप कभी शहर गई हैं?"

"गई तो हूँ।" वह बहुत चौंक उठी थी।

"वहाँ वे," सत्यपाल ने कहा, "नाच सिखाती हैं। उनका स्कूल है। वे मेरी पत्नी नहीं हैं।"

"उनके माँ-बाप ने उन्हें आपके साथ भेज दिया ?" सरस्वती ने ताज्जुब से पूछा।

"गाँव और शहर में फ़र्क होता है। वे एक नर्त्तकी हैं....."

"नर्त्तकी !" सरस्वती की साँस खिंच गई।

विलास सरस्वती के पास आ रहा था। गाँव के दो आदमी उसे देखकर व्यंग्य से मुस्कराये। वह समझा नहीं। मनोरमा से बातें करके उसका सिर भन्ना गया था। इस समय वह हठात् रुक गया। उसे लगा, उसका सिर घूम रहा था। उसने सुना सरस्वती कह रही थी—"सच आप बहुत भोले हैं। आप बुरा मान जायँगे। नहीं, मैं नहीं कहूँगी।"

उसने सुना, सत्यपाल कह रहा था—"मैं जिस बात को शुरू करता हूँ उसे एक किनारे ले जाकर छोड़ देता हूँ। बुरा क्यों मानूँगा ?"

सरस्वती का स्वर आया—"सब पर ऐसे कैसे भरोसा किया जा सकता है ?"

सत्यपाल ने दृढ़ता से कहा—"कसौटी पर सिर्फ खरे की लकीर खिंचती है सरस्वती !" फिर सुनाई दिया—"अच्छा चलूँ।"

सत्यपाल के पहले ही विलास चला गया। सरस्वती विलास के घर चली। उसने देखा वह घर नहीं था। लौट आई। दूसरी बार जाने पर भी वह नहीं मिला। घर भी नहीं आया। क्या हुआ उसे ?

पर विलास एकांत में बैठा सोचता रहता। उस पर छाया गिरी। देखा, मनोरमा थी।

"तो तुम यहाँ बैठे एकान्त में सोचा करते हो ?" मनोरमा ने मुस्करा-कर कहा।

"क्यों ?" वह उससे बात बढ़ाना नहीं चहता था।

"क्या सोच रहे हो ?"

"सोचता हूँ," विलास ने कहा, "औरत का दिल इतना अजीब क्यों होता है ?"

मनोरमा हँसी। कहा—"बस ! यह भी कोई सोचने की बात है ? अरे तुम्हारे पास है क्या ? सत्यपाल के पास दौलत है, ऐश है। बेवकूफ़ ! तुम्हारे पास है क्या ?"

विलास ने झुंझलाहट का अनुभव किया। उसके नेत्र फटे, फिर झुके और उसने आत्मरक्षार्थ कहा—"लेकिन मैंने उसे सचमुच प्रेम किया है।"

"तो ?" मनोरमा ने पूछा जैसे—आगे ?

दूर से किशन ने पुकारा—"मास्टर सा'ब ! मास्टर सा'ब !"

मनोरमा चौंक उठी, विलास भी। उसने कहा—"मैं जाता हूँ।"

मनोरमा ने कुछ नहीं कहा।

विलास ने क्रोध से ही प्रवेश किया। वह सरस्वती के पास आना नहीं चाहता था। आज सरस्वती को उसके आने से लगा, बारह बरस में घूरे के दिन फिरे। वह प्रसन्न हो गई।

"तुम तो पीछे ही पड़ गईं," विलास ने कठोरता से कहा—"किशन ने कहा अभी चलो, अभी बुलाया है।"

"मैंने ही बुलाया था।" सरस्वती सहम गई थी। उसने फिर कहा—"कई बार जाने पर भी तुम घर पर नहीं मिले !"

"क्यों ?"

सरस्वती यह उत्तर सुनकर स्तब्ध रह गई। विलास ने कहा—"कहतीं क्यों नहीं ?"

वह क्षण-भर घूरती रही। फिर उसने स्वर बदलकर कहा—"शहर के लोग अच्छे नहीं होते।"

"फिर ?"

"वे लोग गाँववालों को बेवकूफ़ समझते हैं।"

"जानता हूँ सरस्वती ! आँखों-देखी, कानों-सुनी बात झूठ नहीं होती।"

सरस्वती व्यंग्य नहीं समझी। उसने जो किशन से सुना था उसके ही आधार पर कहा—"तुमको यह नाचने वाली औरत पागल बना रही है। डायन ने रूप-रंग देखा तो रीझ गई। मैं उसका मुँह कुचल दूँगी।"

विलास व्यंग्य से मुस्कराया। उसने धीमे से पूछा—"और सत्यपाल का क्या करोगी?"

"वह आदमी सीधा है....." सरस्वती बात पूरी नहीं कर सकी। विलास चला गया था। रात हो गई। आकाश में से किसीने कहा—'मैंने तुझे इतने दिन प्यार किया। ओ निष्ठुर, क्या यही उसका बदला है? तू जिस फूल की चमक पर रीझ गया है, उसमें गन्ध नहीं है। मैं जानती हूँ, मैं तुझे प्यार करती हूँ। और तेरी वे प्रतिज्ञाएँ भी याद हैं जब तू कहता था कि मेरे अतिरिक्त तुझे कुछ नहीं सुहाता। यह मेरे जीवन में किसने आग लगा दी?'

किशन ने प्रवेश करके कहा—"आज तूने दीपक नहीं जलाया सरस्वती?"

"हाँ किशन," उसने धीरे से कहा, "मेरे घर में अंधेरा छा रहा है।" अचानक ही वह रो पड़ी। उसकी वेदना जैसे किशन को छू गई। बोला—"अब अपने ही पराये हो गए सरस्वती! काका को बुला लो न?"

सरस्वती ने अन्धकार में आँख फाड़कर देखा।

११

दरवाज़े की घण्टी टनटना उठी। जीवन सत्यपाल के भवन में भीतरी भाग से हॉल में आ रहा था। उसने जाकर द्वार खोल दिया। भीतर

एक बीमार-सा व्यक्ति घुस आया। उसके शरीर पर कुछ चकत्ते-से पड़ गए थे।

जीवन चौंककर कह उठा—"हरीश बाबू····यह क्या हुआ तुम्हें ?"

वह आगे बढ़ा किन्तु हरीश ने टोककर कहा—"नहीं, छुओ नहीं जीवन ! मुझे छुओ नहीं। मुझे छूने से तुम गन्दे हो जाओगे।"

और आगन्तुक ज़मीन पर ही बैठ गया। जीवन को गहरा आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"मालिक ! यह आपका हाल क्या है ? आपको क्या हो गया ?"

हरीश ने अपना हाथ बढ़ाकर कहा—"यह जगह है न ? यहाँ बड़ा दर्द होता है; ऐसा लगता है जैसे किसीने बड़ा-सा अंगारा रख दिया हो। हाथ जलने लगता है। और ऐसा लगता है जैसे कि सारा जिस्म जलने लगा हो।"

"लेकिन," जीवन ने झुककर कहा, "आपने डॉक्टर को नहीं दिखाया ?"

"डॉक्टर !" हरीश ने घरघर-भरे स्वर में कहा—"नहीं जीवन ! डॉक्टर क्या जानता है ? डॉक्टर मेरा क्या इलाज कर सकता है ? मेरा इलाज करने वाला तो तड़प-तड़पकर मर गया।" उसके स्वर में गह-राइयों की पर्तों में गूँजती हुई व्यथा थी।

"वह कौन था ?" जीवन ने पूछा।

"वह ?" हरीश ने आँखें फाड़ीं, फिर सिर हिलाकर कहा—"तुम्हें नहीं बता सकता जीवन ! वह मैं सिर्फ सत्यपाल को बता सकता हूँ। सत्यपाल कहाँ है ?"

जीवन को जैसे अब अपनी याद आई। उसने कहा—"आप उनके पुराने दोस्त हैं, आप उन्हें नहीं समझा सकते ?"

"क्या हुआ उसे ?" हरीश ने पूछा।

"वे नाचने वाली औरतों के फेर में पड़ गए हैं। मालकिन····"

कहते-कहते वह चुप हो गया। हरीश ने आतुर कण्ठ से कहा—

"क्या हुआ, जीवन ?"

"मालकिन ने," जीवन ने काँपते स्वर से कहा, "घर का सत्यानाश कर दिया।"

"नहीं जीवन," हरीश ने सिर हिलाया, "चन्दा देवी थी, वह बहुत भोली थी।"

जीवन ने चौंककर कहा—"आपको····आपको कैसे मालूम ?"

एकाएक हरीश भयानकता से दर्द के कारण चिल्ला उठा—"उफ़ ! उफ़ ! बड़ा दर्द है, बड़ा दर्द है····"

वह मुँह के बल औंधा गिर गया था। जीवन घबरा उठा। हरीश धीरे-धीरे सँभलकर उठा। उसके मुख से निकला—"हाथ !"

"क्या हुआ मालिक !" जीवन ने घबराए स्वर से पूछा।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं जीवन !" हरीश अपनी धुन में कहता रहा—"सारा हाथ ही नहीं, सारा जिस्म फुँका जा रहा है। मैं क्या करूँ ? तुमसे कुछ भी नहीं कह सकता। मुझे ऐसा लगता है मौत मेरे सामने खड़ी है। मैं पापी हूँ जीवन ! मैंने जीवन में बड़े-बड़े पाप किये हैं। लेकिन एक दिन, एक दिन····जब मुझे मालूम हुआ····वह मर गई···· मैंने उसे मार डाला····तब से ऐसा लगता है जैसे जल रहा हूँ····जल रहा हूँ····"

"हरीश बाबू !" जीवन ने कहा, "होश में आइए।"

हरीश हँसा। उसके सूखे गालों पर लकीरें पड़ गईं, दाँत निकल आए। उसने कहा—"होश में हूँ जीवन ! ठीक ही हूँ।" फिर उसने याचना-भरे स्वर में कहा—"सत्यपाल के गाँव का पता मुझे बता दो। मुझे वहीं जाना है। मैं बहुत दिन नहीं जिऊँगा जीवन····जो-कुछ मैंने किया है उसका फल मुझे पाने दो। जब तक मैं उससे ख़ुद नहीं कहूँगा तब तक ऐसे ही जलता रहूँगा····मरता रहूँगा····"

जीवन ने विभ्रान्त होकर पूछा—"लेकिन हुआ क्या बाबूजी ?"

हरीश मुस्कराया। अदम्य यातना से होंठ खुले। उसने सिर हिला-

कर कहा—"तुम्हें बता दूँ ? नहीं जीवन ! किस मुँह से कहूँ ? सत्यपाल से कहूँगा। और वह, ताज्जुब नहीं, अपने हाथों से मेरा खून कर देगा। तब मैं हँसकर मरूँगा, तब मेरी आग बुझ जायगी।" हरीश फिर हँसने लगा था। इतना वीभत्स था वह हास्य कि जीवन के रोंगटे खड़े हो गए।

जीवन ने चौंककर देखा, हरीश धीरे-धीरे उठा। उसने पूछा—"बताओ जीवन ! गाँव कौनसा है ?"

"मेरा गाँव है," जीवन ने कहा, "बहरन।"

हरीश जब कमरे से चला गया जीवन उदास ऊपर देख कर कह उठा—"मालिक ! यह क्या हो रहा है ? क्या तू सचमुच इस दुनिया को भूल गया है ? जिसे देखो वही पागल-सा हो रहा है....."

शब्द आगे नहीं बढ़े, घुट गए।

१३

जंगल की नीरवता को मनोरमा ने तोड़ दिया। विलास ठिठक गया। मनोरमा ने आवेश से कहा—"पागल ! जानते हो ? सत्यपाल ने मुझे भुला दिया है, सरस्वती ने तुम्हें।"

"नहीं, मनोरमा !" विलास ने विरोध किया।

"नहीं ?" मनोरमा ने आँखें तरेरकर कहा—"मैं हमेशा सच कहती हूँ। वह तुम्हें प्यार नहीं करती। औरत औरत की आँखों को पहचानती है। सत्यपाल की दौलत ने उसे मोह लिया है।"

"यही कहने मुझे यहाँ आई हो ?" विलास ने पूछा—"तुम

सत्यपाल को रोक नहीं सकतीं ?"

"मैं उससे भी भयानक काम कर सकती हूँ," मनोरमा के होठों पर विद्रूप था। वह कहती गई—"हारकर मैं झूठन नहीं खाती विलास! दुनिया मुझे खतरनाक समझती है, तुम भी समझते हो ?"

"नहीं," विलास ने कहा, "तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं।"

वे रुक गए। विशाल वृक्ष की उनींदी छाया में ठण्डक थी, और पत्ते खड़खड़ा रहे थे। दूर बादलों के टुकड़े पहाड़ पर छितराये-से थे, और कहीं बहुत दूर किसी चरवाहे की बाँसुरी बज रही थी। कभी-कभी नदी का बरसाती पानी फुंकार उठता, और फिर पत्ते काँपते; काँपती छाया ताना-बाना बुनती और फिर दुपहर की नीरवता साँय-साँय करती पहाड़ी पथों पर घूमती। झाड़ियों में सनन-सननकर समीर हरहराता और तब दिगन्त तक कुछ नहीं बोलता, सब-कुछ निस्तब्ध होता चला जाता, जहाँ सन्नाटे से सन्नाटा काटे काटता और उसकी नीरव प्रतिध्वनि मन के जल पर चुपचाप गिरती। एक सुनसान हलचल चक्कर दे-देकर फैलती जैसे यह अपने से विराट, विराटतम, सुनसान निस्तब्धता की परिधि को छू लेना चाहती हो।

मनोरमा ने कहा—"मैं समझती थी सत्यपाल आन का आदमी है, मगर वह एक भौंरा है, वह एक लहर से भी चंचल है, वह एक," मनोरमा ने आँखें फाड़कर कहा, "खतरनाक भँवर है। मैं उसे—" उसका स्वर उठा—"बताना चाहती हूँ कि दुनिया में उससे भी भयानक लोग हैं। वह तुम्हारी सरस्वती को तुमसे छीन ले और तुम देखते रहोगे ?"

"नहीं मनोरमा," विलास फूत्कार कर उठा, "मैं उसका खून कर दूँगा।"

मनोरमा हँसी। "वह तो तुम्हारी हार होगी विलास!"

"तो फिर मैं क्या करूँ ?" वह नादान-सा कह उठा।

"बदला लेने का एक ही तरीका है। हम-तुम यह दिखाएँ कि हम एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। अपने-आप दोनों ठीक हो जायँगे।"

"गलत," विलास ने कहा, "वे ठीक क्यों होंगे ?"

"सच कहते हो," मनोरमा ने अनुभव किया, "वे नहीं होंगे। यह मेरी भूल है। पर फिर मैं क्या करूँ ?"

विलास ने कहा—"तुम सत्यपाल से क्यों नहीं कहतीं ?"

दूर से किशन ने देखा। उसे लगा कि विलास भयानक पथ पर था। वह दौड़ चला। विलास नहीं जान सका।

सरस्वती ने पनघट से लाकर घड़ा उतारा ही था कि किशन ने एक ही दम उगल दिया—"सरस्वती ! मनोरमा और विलास जंगल में····"

वह कह नहीं सका। घड़ा सरस्वती के हाथ से छूटकर धरती पर गिरकर फूट गया। पानी से धरती भीग गई। वह चुपचाप देखती रही। शून्य पर उसकी दृष्टि कुछ पढ़ रही-सी लगती थी।

फिर वह सुस्थिर हो गई। उसने दृढ़ स्वर से पूछा—"आम के बाग में किसे छोड़कर आया है ?"

"किसी को नहीं," किशन ने मूर्खता से कहा।

"चिड़ियाँ लग जायँगी, जानता है ?"

"लग गईं सरस्वती," किशन ने कहा, "उसने आम कुतरना भी शुरू कर दिया है····"

"किशन !" सरस्वती ने डाँटा। वह चुपचाप चला गया। सरस्वती कुछ देर सोचती रही। फिर वह सत्यपाल के खेमे की ओर चली। आम के बाग में किशन हर्रया, हर्रया करके पंछी उड़ा रहा था। सरस्वती ने देखा, सत्यपाल बन्दूक लिये निशाना साध रहा था उड़ती चिड़िया पर। किशन डर से चिल्ला उठा—"मैं नहीं हूँ बाबूजी, मैं नहीं हूँ, वह तो मास्टर है ···वही आपकी बीबीजी को ले गया है····"

सत्यपाल ने बन्दूक झुकाकर कहा—"कौन ले गया है ?"

"कोई नहीं," सरस्वती पास पहुँच गई थी। वह कहती गई—"यह मेरा बाग है। आप किस पर निशाना लगा रहे थे ?"

सत्यपाल ने बन्दूक कन्धे पर रखकर कहा—"तुम्हारे आम को

चिड़िया खाने जा रही थी।"

"वह तो कुतर भी गई बाबूजी, कुतर भी गई," किशन पुकार उठा।

सत्यपाल हँसा। कहा—"अभी नहीं सरस्वती! मेरे रहते कोई तुम्हारे बाग़ को नहीं छू सकेगा।"

सरस्वती देखती रही। बहुत-कुछ था, पर कहा कुछ नहीं। वह जंगल की ओर बढ़ गई। सत्यपाल चौंक उठा।

"किशन!" उसने पूछा—"क्या बात है?"

"मुझे क्या मालूम बाबूजी?" उसने डरकर कहा—"मैंने आँखों से सुना था कि विलास और आपकी बीबीजी····"

"बेवकूफ!" सत्यपाल ने मुस्कराकर कहा—"आँखों से सुना था कि देखा था?"

"आपके हाथ में बन्दूक देखकर मेरी आँखें भी सुनने लगी हैं।"

सत्यपाल हँस दिया।

उस समय सरस्वती पेड़ की आड़ में हो गई। उसने देखा, विलास और मनोरमा आ रहे थे। उसने सुना। मनोरमा ने पूछा—"वादा करते हो?"

"मैं झूठ नहीं कहता। विश्वास करना तुम्हारे हाथ की बात है।"

"करती हूँ।"

विलास चला गया। मनोरमा सोचती रही। जब वह बढ़ी, सरस्वती सामने खड़ी थी। उसने आँख उठाकर देखा।

"वह झूठ ही कहते थे," सरस्वती ने कहा, "उन पर विश्वास न करना, यदि तुम्हारे हाथ की बात है, तो न करना ही ठीक होगा।"

"ग़लती किससे नहीं होती?" मनोरमा मुस्कराई।

"बीबीजी! यह खेल अच्छा नहीं है।"

"कौनसा खेल?" मनोरमा ने भौं उठाई।

"आप मेरी बसी हुई दुनिया को उजाड़ नहीं सकतीं।"

"और तुम सत्यपाल को अपना बना सकती हो ? याद रखो अगर तुम मेरा खेल बिगाड़ोगी तो मैं सबका खेल बिगाड़ दूँगी। मैं जिस जिन्दगी में थी उसे सत्यपाल की बात पर छोड़ने को तैयार हुई थी। अगर वह मेरा न होगा, तो मैं किसी की नहीं हो सकती। लेकिन अगर तुम ? तुम !! तो मैं तुम्हें भी कहीं की नहीं रहने दूँगी।"

सरस्वती ने धीरे से कहा—"मैंने सत्यपाल के लिए कभी हाथ नहीं बढ़ाया।"

"मर्दों को जीतना ही मेरा काम भी रहा है। आज पहली बार हारी हूँ तो हारकर फिर नहीं हारूँगी।"

"लेकिन एक बात सुन लो। मैं सत्यपाल से प्रेम नहीं करती। वह सिर्फ दौलत है।"

"दुनिया में सब-कुछ सह सकती हूँ, लेकिन औरत का घमण्ड नहीं सह सकती। मैं यह नहीं सह सकती कि किसी औरत में इतनी ताकत है कि वह मुझे हरा सके।"

"तुम हार-जीत का खेल खेल सकती हो, बार-बार हारकर जीत भी सकती हो, लेकिन मैं एक ही बार हार सकती हूँ, एक ही बार जीत सकती हूँ, क्योंकि," सरस्वती ने कहा; "तुम एक नाचने वाली हो····"

"और तुम एक भिखारिन," मनोरमा ने फुंकारकर कहा।

सरस्वती जोर से हँसी। कहा धीरे से—"हार गई ?"

मनोरमा ने देखा और पाँव पकड़कर क्रोध से चली गई। जिस समय वह पहुँची, सत्यपाल खेमे में बैठा सिगरेट पी रहा था।

"तुम कहीं चली गई थीं ?" उसने पूछा।

"हाँ ! तुम शिकार खेलने गये थे। मैं घूमने चली गई थी।" बिस्तर पर बैठकर पूछा—"कोई शिकार हाथ लगा ?"

सत्यपाल ने हाथ फैलाकर कहा—"बन्दूक के शिकारी के साथ चोट ही यह है कि दागने के पहले उड़ती है पेड़ की चिड़िया, और उससे भी पहले उड़ जाती है हाथ की चिड़िया।"

एकाएक आकाश में बादल प्रचण्ड गर्जन कर उठा। वे छितराये मेघ सब एक विराट् रूप धारण करके बज उठे थे। मनोरमा खड़ी हो गई। कहा—"मैं आज फैसला कर लेना चाहती हूँ।"

"किसका ?" सत्यपाल खड़ा हो गया।

वह पास आ गई, और आँखों में घूरकर देखते हुए कहा—"तुम सरस्वती को चाहते हो ?"

"अगर सच कहूँ तो कहूँगा हाँ।"

"फिर मैं ?" मनोरमा ने आँखें फाड़कर कहा।

"तुम मेरी गुलाम तो नहीं हो ?"

"मैं उस कमीनी औरत का खून कर दूँगी····" मनोरमा चिल्ला उठी।

सत्यपाल अधीर दिखाई दिया। उसने कहा—"संभलकर बात करो मनोरमा ! वह देवी है।"

मनोरमा चुप नहीं हुई। "ऐसी पच्चीसों देवियाँ पराये मर्दों से····"

सत्यपाल का हाथ चल गया। चटाक आवाज़ आई। मनोरमा चुप हो गई, पर अब वह पागल-सी दिखाई दे रही थी।

ठीक उसी समय सरस्वती विलास के पाँव पकड़े रोती हुई कह रही थी—"तुमने मुझे पागल कर दिया है विलास ! यह तुम क्या कहते हो ?"

विलास आवेश में था। उसने तिक्त स्वर से कहा—"मैं गलत कहता हूँ। तुम अपने-आपको बहुत चतुर समझती हो सरस्वती ! अगर सत्यपाल मुझसे तुम्हें छीन सकता है तो मैं भी उसकी मनोरमा को उससे छीन सकता हूँ।"

"पर तुम मेरे थे विलास····"

विलास ने सुना ही नहीं। वह बुदबुदा उठा—"प्रेम !! मैं सत्यपाल की हत्या कर सकता हूँ। पर नहीं, नहीं करूँगा····क्योंकि मेरी सरस्वती उसे प्यार करती है····"

दारुण वेदना से उसका गला रुँध गया। वह चला गया। सरस्वती फूट-फूटकर रोती रही। फिर उसने विलास के उस घर को देखा जिसे वह अपना समझने लगी थी। एक-एक वस्तु उसे कचोट उठी। फिर वह उठी और उसने उस घर को प्रणाम किया।

१४

सरस्वती को लगा जैसे जीवन का सारा सुपना नष्ट-भ्रष्ट हो गया। किस लिए यह घरौंदा अपने-आप टूट गया? क्या उसका भी इसमें कुछ दोष था? क्यों? किन्तु फिर याद आया कि पुरुष स्त्री को अपने सुख का एक साधन समझता है। वह उसे अपने भोग की वस्तु मानता है। नहीं, उसका हृदय पुकार उठा, वह माध्यम नहीं है, वह केवल पथ नहीं है। यदि पुरुष यात्री है तो स्त्री भी एक पंछी की भाँति है। दोनों समान हैं। शरद का 'नारी का मोल' हँसा। सरस्वती का शरीर झन-झना उठा। विलास उस पुतली पर रीझ गया है।

वह तेजी से चली। फिर ध्यान आया। स्त्री ही तो स्त्री की शत्रु है। पुरुष और स्त्री दोनों ही कितने स्वार्थी हैं! वे जिसे चाहते हैं, एक दूसरे के अतिरिक्त और किसी का भी अधिकार एक-दूसरे पर नहीं सह सकते। परन्तु क्या सरस्वती भूल कर रही है? यह तो नितान्त स्वाभाविक ही है। और वह नाचने वाली स्त्री! सुन्दरी है। निस्सन्देह वह सरस्वती से कहीं अधिक लुभाने वाली है। सरस्वती को उस पर घृणा हुई—पुरुष को फँसाने वाली स्त्री मायाविनी!

सत्यपाल तम्बू में खड़ा था। उसके हाथ पतलून की जेब में थे।

कमर पर पिस्तौल लटक रही थी। वक्त नहीं कट रहा था। उसने पिस्तौल को निकाला और एक-एक करके उसमें गोलियाँ भरीं। मुस्कराया। हाथ में तोला और फिर उसने उसे सन्तोष से देखा। क्षण-भर उसे लगा जैसे वह एक भयानक शक्ति हाथ में लिये खड़ा था।

उसने देखा, दूर सरस्वती तेजी से चली आ रही थी। उसकी गति में यह उद्वेग उसने पहले कभी नहीं देखा था। आज हिमालय को गलते देखा और जड़ीभूत महिमा को पिघलते देखकर उसे हर्ष हुआ।

मनोरमा सो रही थी। रेशम की चादर से उसने अपना वक्ष ढँक रखा था। उसकी नींद भी एक दुश्चिन्ता-सी दिखाई दे रही थी, जैसे वह इस समय भी कुछ सोच रही थी। सत्यपाल क्षण-भर खड़ा रहा। मनोरमा ने करवट ली।

सत्यपाल सरस्वती के पीछे चल पड़ा। तम्बू के बाहर निकलते ही उसके मुँह पर हवा का तेज झोंका बज उठा। उसके बाल बिखरकर हवा में उड़ने लगे, पर इस समय उसे और कोई ध्यान नहीं था।

आपस में मिल-मिलकर जो बादल घने हो चले थे, वे एक बार घुमड़ते हुए-से फैले और एकाएक ही एकत्र होकर बड़ी ज़ोर से गरज उठे। वह प्रचण्ड ध्वनि एकदम भयानक स्वर से दिगन्तों में प्रतिध्वनित हुई जैसे किसी विराट् लौह के सिंहद्वार पर हाथी ने सिर पर लोहे का तवा रखकर टक्कर-पर-टक्करें दीं और द्वार अर्राकर टूट चला। वह आवाज झुककर लोहे की पर्त की तरह फैलकर तम्बू में घुस गई।

मनोरमा की आँख खुल गई। वह एक बार अलसाई-सी सीधी हुई और आँखें मींड़कर उठ बैठी। उसने देखा, तम्बू में नीरवता थी।

सत्यपाल नहीं था। वह उठ बैठी। उसने अपने माथे पर झूलती लट को पीछे कर लिया और एक अंगड़ाई ली। अचानक ही उसे ध्यान आया कि सत्यपाल उसे सोते छोड़कर कहीं चला गया है। हृदय ने पूछा—'तो कहाँ गया है वह ?'

'कहाँ गया होगा ? वही एक केन्द्र है उसके ध्यान का—सरस्वती !'

और जैसे-जैसे सरस्वती का नाम याद आने लगा उसके हृदय में धुआँ-सा उठने लगा। क्यों गया है वह ? क्योंकि उस स्त्री ने उसे जीत लिया है। फिर जैसे उसे क्रोध आने लगा।

वह तेजी से उठ खड़ी हुई। बाहर देखा। झूमते मदोन्मत्त हाथियों के-से बादल आसमान में क्रीड़ा कर रहे थे। मनोरमा के किसी ने सीने पर घूँसा-सा मार दिया।

"रामदीन !" मनोरमा चिल्ला उठी।

रामदीन बाहर बैठा चिलम पी रहा था। इस आवाज को सुनकर वह चौंका। उसने पगड़ी ठीक की और चिलम वहीं औंधी कर दी।

"बीबीजी !" उसने सामने आकर कहा।

"बाबू कहाँ हैं ?" मनोरमा ने आवेश में ही कहा। रामदीन झिझका। वह समझ नहीं पाया कि क्या कहे। पर मनोरमा घूर रही थी।

"हुजूर, वह लड़की उस दिन आई थी न," उसने डरते हुए कहा और देखा, मनोरमा के मुँह पर एक प्रतिहिंसा-सी दिखाई दे रही थी। वह रामदीन को एकटक देख रही थी। रामदीन ने फिर काँपते स्वर में कहा—"बाबूजी उसके साथ ही चले गए हैं।"

"तू जा।" मनोरमा फुंकार उठी। रामदीन चला गया।

मनोरमा गुस्से से इधर-उधर घूमने लगी। वह जैसे एक घायल शेरनी थी। आज वह क्रोध से मदान्ध-सी हो रही थी। स्त्री की सहिष्णुता का बाँध डूब गया था। वासना की अपूर्ण तृष्णा प्रतिहिंसा का जल बनकर उस बाँध को लाँघ गई थी।

"रामदीन !" मनोरमा ने फिर पुकारा।

"बीबीजी !" रामदीन दौड़ा हुआ आया।

"मास्टर को जानता है ?" मनोरमा ने पूछा।

"जान गया हूँ।" रामदीन ने सिर हिलाया। "वे ही न जो उस लड़की के साथ उस दिन चाय पर आये थे ? मैं तो गाँव में सबको जानता हूँ।"

"उसे फौरन बुला ला!" मनोरमा ने उसकी ओर न देखते हुए कहा। इस समय जो वह कर रही थी, हृदय अपनी ही शंका में था।

रामदीन चला गया। उसके जाने के बाद मनोरमा एक बार बाहर आई और उसने रामदीन को जाते हुए देखा। हवा तेज हो रही थी।

मनोरमा तम्बू में घुस गई।

सत्यपाल उस समय ठिठक गया। सरस्वती आम के बाग़ में पहुँच गई थी। बड़े-बड़े पेड़ झूम रहे थे। पक्षी चहकते हुए उन पर अपना स्थान ढूँढ़ रहे थे। लम्बी-लम्बी शाखाएँ उस समय साँपों की तरह हिल रही थीं।

उसका खयाल ठीक था। सरस्वती यहीं आयेगी, यही उसने भी सोचा था। शायद वह विलास के घर से आ रही है। सत्यपाल ने देखा, सरस्वती के नीचे का होंठ फड़क रहा था। कितनी प्रबुद्ध और शान्त लगती थी वह! सत्यपाल का हृदय विचलित हो उठा, किन्तु फिर भी वह ऊपर से नितान्त गम्भीर था।

सरस्वती आज वेदना से व्याकुल हो उठी थी, आज! आज ही उसके जीवन की साधों को बड़ी ठोकर लगी थी। क्या वह उसे सह सकेगी? यातना का रोमांच ही इससे कहीं अधिक सुखद होता। वह आगे बढ़ी। आमों की घनी धुन्ध में वह थोड़ी देर चुपचाप-सी खड़ी रही और फिर अपने आम के उसी पेड़ के नीचे रोने लगी।

सत्यपाल आया है, यह जैसे उसे मालूम ही न था। उसने उस वृक्ष को दोनों हाथों में बाँध लिया और फिर उदास दृष्टि से उसने उसे देखा। पलकों की याचना आँसू बन गई। सत्यपाल ने देखा।

सरस्वती ने करुण स्वर से कहा—"तू हमारा साक्षी है। तू हमारे स्वप्नों का साक्षी है।" उसका गला रुँध गया। वह फिर रोने लगी। सत्यपाल आगे बढ़ा। सरस्वती फिर उसी भाँति कहने लगी—"देवता! वन-देवता! क्या आज तुझे कोई भी अनुभूति नहीं हुई? क्या तू आज कुछ भी नहीं बोलेगा? तेरे नीचे उस दिन हमने कसम खाई थी,

क्या यही उसका नतीजा है ? तुझे इसीलिए अपना प्रेम समझा था कि तेरे फल मीठे होते हैं ?"

सरस्वती का स्वर अवरुद्ध हो गया। दोनों आँखों से आँसू उमड़-कर बह चले। आज उसके दुख को सुनने वाला इस वृक्ष के सिवाय कोई भी नहीं था। और वृक्ष चुप खड़ा था। किसी ने उत्तर नहीं दिया।

तूफान ने साँस ली। वह घहरता स्वर अमराई में सनसना उठा।

सत्यपाल धीरे-धीरे उसके पास पहुँचा। सरस्वती रोती हुई विह्वल हो गई थी। उसकी हिचकियाँ सुनकर सत्यपाल को एक उठते हुए पर्दे के पीछे से फूटता उजाला दिखाई दिया। दूसरी ओर अनजाने ही उसका दिल दहल उठा।

कहीं पेड़ पर भयभीत कोई पक्षी आर्त स्वर से चिल्ला उठा। स्वर की वेदना तूफान में बिछुड़े साथी को पुकार उठी। पर वहाँ भी कोई नहीं आया। सत्यपाल ने देखा, एक लम्बी पूँछ का काली गर्दनवाला पक्षी फरफराया-सा उड़ा और फिर उसी आर्त वेदना से चिल्लाकर वहीं बैठ गया।

धुँधलका उतर आया था। हर वस्तु धुँधली दिखाई देने लगी थी, जैसे वासनामय धरित्री अपने उद्वेग को शान्त करने के पहले प्रकाश के दीपक बुझा देना चाहती थी।

हवा उसकी व्याकुल साँसें थीं, जिनमें से इस समय एक ताप उठ रहा था। सत्यपाल को इस ताप में जीवन की एक नई अभिव्यक्ति का इंगित मिला।

मेघ धुआँधार-से घिर-घिरकर मस्त हो गए थे। हवा से घुमड़ते ऐसे लगते जैसे ऊपर को उठते चले जा रहे हैं, और पानी से बोझिल हो-होकर नीचे को झूल पड़ते हैं, ऊल पड़ते हैं। और आकाश हँसा। कैसी दारुण पिपासा थी वह कि सारी घुटन अपनी ही मादकता में थर्रा उठी थी।

सत्यपाल आतुर-सा देखता रहा। वह भूल गया कि वह साथ में मनोरमा को लाया था। मनोरमा के हृदय में आतुरता की प्रचण्ड वासना अब अपने वस्त्र उतारकर अधनंगी हो चुकी थी, अपने-आप पर लजाना भूल गई थी। मनुष्य की पशु-वृत्ति में लज्जा ही उसके चिन्तन की सूक्ष्म अनुभूति है। विलास गम्भीर खड़ा था। रामदीन उसे अभी बुलाकर लाया था। विलास उस समय घर में नहीं था। वह बाहर घूम रहा था। रामदीन की बात सुनकर वह समझ नहीं सका था।

मनोरमा ने उसके कन्धे पकड़कर कहा—"वे लोग फिर साथ-साथ बाग़ गये हैं।"

"फिर!" एक शब्द, एक पागल विभ्रम। उनका साथ-साथ जाना दोनों के हृदय को कचोट रहा था। दोनों के भीतर से जैसे दो विषैले शब्द-सर्प निकले और दोनों के हृदय को एक-दूसरे के सर्प ने डस लिया। विष फैल गया।

"चलो, भाग चलें!" मनोरमा ने उसके और पास आकर कहा। वह अंग्रेज़ी सभ्यता की पली थी, विलास नितान्त भारतीय। एक स्त्री का इस प्रकार सान्निध्य उसे चौंका रहा था। मनोरमा की आँखें जल रही थीं। विलास ने अपनी हतबुद्ध अवस्था में ही धीरे से उससे पूछा—"कहाँ?" और दुहराया, "कहाँ चलोगी?"

उसकी दृष्टि में एक कठोर सूनापन था। आकाश में मेघ फिर गरजे। प्रचण्ड ध्वनि फैली।

"कहीं भी। आसमान का दिल धड़क रहा है विलास! कितनी हलचल मच रही है! मन में आता है कि इस तूफ़ान की तरह मेरा भी सब-कुछ पुकार उठे।" और सचमुच विलास को लगा कि सब-कुछ तैर रहा था, सब-कुछ एक विराट् आवेश में था।

"तूफ़ान!" विलास के होंठ फुसफुसा उठे। मनोरमा की काली अलकें इस समय उसके गोरे मुख पर झूल आई थीं। विलास ने देखा, पर फिर भी उसके हृदय में उस सौन्दर्य ने कोई तड़प पैदा नहीं की।

"आज रुकना नहीं चाहती विलास, चलो।" मनोरमा ने अपनी संकुचित आँखों से घूरा। फिर जैसे वह उत्तर सुनने के लिए उद्यत थी, उसने पूरी आँखें खोलकर देखा।

"लेकिन क्यों ?" विलास ने काँपते स्वर से कहा। सरस्वती की सौम्य मूर्ति अब निर्वात निष्कम्प दीपशिखा की भाँति दिखाई दे रही थी।

"कायर !" मनोरमा ने फूत्कार किया, "तुम्हारी औरत को दूसरे आदमी ने काबू में कर लिया है, तुम इसे देखते रहोगे ? ज़िन्दगी अगर वह नहीं है जो तुम चाहते हो, तो फिर वह सही, जो कम-से-कम एक जुनून तो है....."

मनोरमा ने उसे छोड़ दिया। दोनों हाथों से अपने मुँह पर बिखरी अलकों को पीछे समेट लिया और फिर सिर उठाकर बालों को पीछे किया। इस समय उसे यह भी ध्यान न था कि उसके वक्ष पर से वस्त्र खिसक गया था।

"लेकिन," विलास के स्वर फूटे। वह जैसे मनोरमा को देख ही नहीं रहा था। माया और सौन्दर्य का प्रभाव या तो एक झटका है, या एक सर्वग्राही छाया। दोनों के अतिरिक्त तीसरा गम्भीर रूप ही उसका सात्विक स्वरूप है।

"सरस्वती मेरे सामने मेरे सत्यपाल को छीन ले ! मैं देखती रहूँ ?" मनोरमा ने कहा—"यह कभी नहीं हो सकता।" विलास ने आँखें फाड़कर देखा। उसके भीतर जैसे किसी ने निर्दयता से छुरा घुसेड़ दिया। मनोरमा ने उसके कन्धे को फिर पकड़कर विह्वल स्वर में कहा—"विलास ! जानते हो न तुम कि मैं खाली हाथ नहीं लौटूँगी, मैं उसके विलास को ले जाऊँगी।"

विलास का शरीर सिहर उठा। वह पीछे हट गया। मनोरमा घायल-सी देखती रही और सत्यपाल का स्वरूप उस समय उसके नयनों में घूम गया। विलास अधीर-सा चिल्ला उठा—"मनोरमा !"

'तो क्या मनोरमा सरस्वती से बदला लेना चाहती है ? क्या वह

भी उसकी प्रतिहिंसा का माध्यम है ? क्या उसका केवल इतना ही अस्तित्व है ? यह स्त्री भी उससे प्रेम नहीं करती ? क्या वह इतना तुच्छ है ?' विलास ने सोचा।

"जानती हूँ, तुम एक कायर हो। तुम अगर सत्यपाल को नहीं मार सकते तो उसके" मनोरमा ने मुख विकृत करके कहा, "घमण्ड को भी नहीं मार सकते।"

और मनोरमा ने उसे उपहास से देखा। विलास का मन किसी ने एक पैनी बर्छी से छेद दिया। वह जानता था कि वह सुन्दर था, पढ़ा-लिखा था, गाँव के लोगों में एक आदर्श-सा था। उसने फूत्कार किया—"मार सकता हूँ मनोरमा ! उसका अन्त कर सकता हूँ, पर वह मैं यों नहीं करूँगा। जानती हो तुम, मैं शहर जाकर दौलत पैदा करूँगा—इतनी दौलत पैदा करूँगा कि सरस्वती मेरे क़दमों पर आ गिरेगी।"

मनोरमा के नेत्र चमक उठे। ढंग पर आ गया था वह। वह दुनिया के हर मर्द को सिक्के की तरह उठाकर बाज़ार में चलाने का दावा करती थी। उसके हाथ में सिक्का उसके कहने से चित्त-पट्ट गिरता आया था।

"चलो विलास !" उसने कहा, "तुम किसी के गुलाम हो ?"

"नहीं," विलास ने कहा।

"तो फिर तुम्हें डर किसका है ?"

"बीबीजी !" स्वर तम्बू के द्वार पर गूँजा।

दोनों चौंके। रामदीन था।

"क्या है ?" मनोरमा ने पूछा।

रामदीन ने कहा—"बीबीजी ! अँधेरा होने लगा है।" मनोरमा ने सोचा, अच्छी बाधा है।

"तूफ़ान आ रहा है। यह सब डेरे-तम्बू उड़ जायँगे।" रामदीन कहता गया। वह सोचने का यत्न कर रहा था, किन्तु समझ नहीं पा रहा था कि आख़िर वह करे तो क्या करे ?

"तूफ़ान में क्या बचता है, जो मैं अफ़सोस करूँ ?" मनोरमा ने उत्तर दिया—"उड़ेगा ही सब। पहले से सोचना चाहिए था।" उसे एक आनन्द हुआ—सब नष्ट होगा। फिर एकाएक उसे टालने का विचार आया। कहा—"अपने बाबू को ढूँढ़कर ला। वे आयेंगे तभी कुछ हो सकेगा।"

"कहाँ होंगे वे ?" रामदीन ने पूछा, परन्तु मनोरमा की घूरती आँखों को देखकर अपने-आप कह उठा—"लाता हूँ, लाता हूँ।" रामदीन चला गया।

मनोरमा उसको जाते हुए देखती रही। जब वह कुछ दूर निकल गया तो उसने अत्यन्त आतुरता से कहा—"चलो विलास !"

"कहाँ चलोगी ?"

"शहर। वहाँ मैं सब इन्तज़ाम कर दूँगी।"

उसने विलास का हाथ पकड़ लिया। विलास उसके साथ चल पड़ा। उसने कोई विरोध नहीं किया। दोनों तेज़ी से मोटर की ओर चले। मनोरमा ने दरवाज़ा खोला और जाकर स्टीयरिंग व्हील के सामने बैठ गई। और फिर कहा—"तुम यहाँ आ जाओ।" हाथ बढ़ाकर दरवाज़ा खोला। विलास एक क्षण ठिठका। मनोरमा ने कहा—"जल्दी करो।"

विलास बैठ गया। मनोरमा ने मुस्कराकर कहा—"अब देखती हूँ, विलास ! इस एहसान के लिए मैं तुम्हें क्या दूँगी, यह मैं इस समय नहीं बता सकती।"

मनोरमा ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। घर्र-घर्र की हल्की आवाज़ आई और फिर लम्बी मोटर धीरे से आगे खिसकी। मनोरमा ने गियर बदला। गाड़ी भाग चली।

गाड़ी तेज़ होने लगी।

विलास ने कुछ झिझकते स्वर से कहा—"रास्ता पहाड़ी है, तूफ़ान....."

मनोरमा हँसी। विलास उस उन्माद से चौंक उठा।

"इस राह पर किसी को चैन मिला है ?" उसने सुना। मनोरमा ने उसके नेत्रों को घूरकर देखा—ऐसी दृष्टि थी कि विलास ने चौंककर देखा। वह कुछ सकपका गया।

"विलास ! यह गाँव का रूप तुम्हें छोड़ना होगा। वैसे ज़्यादा फ़र्क नहीं पड़ेगा। लेकिन थोड़ी-सी चमक, चाहे बिलकुल सादी ही हो, ज़रूरी है। ख़ैर, यह तो तुम्हें शहर में रहने पर अपने-आप मालूम हो जायगा," मनोरमा ने कहा।

"मैं शहर में पड़ा हूँ कुछ दिन। वहाँ बेकारी से ऊबकर ही मैं यहाँ आया हूँ।"

"तब तुम ग़रीबी में रहे होगे विलास ! वह अब काम न देगा। शहर का मतलब ऐश है, और ऐश के लिए दौलत चाहिए।"

विलास ने अनुभव किया—मनोरमा जीवन की कठोर वास्तविकता को उघाड़ रही थी, जो उतनी ही वीभत्स थी जितनी कोई भी गला-ज़त। लेकिन शहर की गलियाँ सब सफ़ेद पत्थरों से ढँकी रहती हैं, उन्हें कोई नहीं देख पाता। ऐसे ही तो यह समाज है। ऊपर-ऊपर की टीमटाम है इसमें, भीतर क्या है''''गन्दगी''''

अब अन्धकार उतर आया था। रास्ते पर ऊबड़खाबड़ पत्थरों के किनारे अपनी छाया घनी करते जा रहे थे। मनोरमा ने बत्ती जला दी। फिर उसने हाथ बढ़ाकर रेडियो का एरियल खींचा। मोटर में संगीत की लहरी काँपने लगी। इसने विलास पर जादू किया—'सुख ! कितना सुख ! कोई अन्त नहीं। इस सबसे इन्कार किया जा सकता है ? कभी नहीं। यह सब ही तो मनुष्य को आनन्द देते हैं''''

पार्वत्य भू-भाग अब गहरा होता जा रहा था। मोटर ऊपर चढ़ रही थी।

दूर, बहुत दूर, मोड़ पर शहर की बत्तियाँ नीचे, बहुत नीचे, दिखाई दे रही थीं जैसे कहीं एक स्वप्नलोक झिलमिल कर रहा था। मनोरमा के घने और सुगन्धित केश उसके मुख के चारों ओर छितरा रहे थे। विलास ने

देखा—साधारण थे वे बाल, पर अपनी सज्जा के कारण कितने आकर्षक प्रतीत हो रहे थे ! क्या था सरस्वती में, जो सत्यपाल इस स्त्री को छोड़कर उसकी ओर आकर्षित हुआ ?

विलास के हृदय ने पूछा—'क्या यह असलियत में नहीं है, नकल में ही है'....'

१५

रात का घना अँधेरा बादलों के कारण समय से पहले ही पृथ्वी पर उतर आया था, पर सब प्रयत्न करके भी ऐसा नहीं हो सका था कि पास खड़ा व्यक्ति दिखाई नहीं देता।

कभी-कभी बिजली चमकती और कौंध में आँखें चौंधिया जातीं। उस समय एक सन्नाती हुई रोशनी क्षण-भर काँपती और फिर न जाने कहाँ बादल में लुप्त हो जाती।

तूफ़ानी हवा अब तेज़ हो गई थी। सरस्वती की साड़ी कभी झपाटे में फैल जाती, कभी उसके शरीर से चिपटती।। झोंके मुँह पर बज रहे थे, पर सरस्वती को जैसे किसी पर भी ध्यान देने का अवकाश नहीं था।

"कब तक रोती रहोगी?" सत्यपाल ने धीरे से झुककर कहा। छूना चाहकर भी छुआ नहीं।

"आप !" वह चौंक उठी—"आप यहाँ क्यों आ गए ? क्या मुझे बिलकुल ही बरबाद कर देने का इरादा है ?" सरस्वती के स्वर में एक भय था। उसने चारों ओर देखा जैसे कोई देख तो नहीं रहा था। उसे विचार आया—यदि विलास उसे यहाँ देख ले तो ? क्या वह अविश्वास

उतनी ही भयानकता से बढ़ नहीं जायगा ?

"यह तो मेरी बात का जवाब नहीं है ?" सत्यपाल ने कहा। वह अपने शब्दों को व्यर्थ ही नष्ट नहीं हो जाने देना चाहता था।

"आपकी बात का जवाब मेरे पास है ही कहाँ ?" सरस्वती ने कहा और रोकने का प्रयत्न करके भी वह असमर्थ हो गई। उसकी आँखों से दो आँसू फिर निकल ही आए और रोने की आवाज सुनाई दी।

"तुम शायद इसलिए रो रही हो कि तुम्हारा विलास मनोरमा पर रीझ गया है; लेकिन यह भी जानती हो कि वह रीझ नहीं है, वह उसकी चमक पर जाकर बुझ गया है ?" सत्यपाल ने पूर्ण धैर्य से कहा। सरस्वती को विस्मय हुआ—कैसा आदमी है, जानता है फिर भी यह कुछ नहीं कहता ?

"वे नहीं बुझे, मैं बुझ गई हूँ," सरस्वती ने आर्द्र कण्ठ से कहा। वह अपने-आपको अब अधिक छलना नहीं चाहती थी।

"तुम नहीं बुझ सकतीं सरस्वती ! तुम चाहो तो मैं तुम्हारे लिए सब-कुछ कर सकता हूँ," सत्यपाल ने कहा। फिर एकाएक उसका स्वर बदल गया—"मैं समझता था कि मैं सारी जिन्दगी इसी तरह काट दूँगा लेकिन यह मेरी भूल थी।" भूल की वेदना उसके स्वर में गहराई और उसने बहुत धीमे से कहा—"मैं तुम्हारी इज्जत करता हूँ सरस्वती ! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।"

आकाश में बज्र ठनका। एक प्रचण्ड शब्द उठा। आकाश चिल्लाया। बादलों ने भयानक आर्तनाद किया।

"नहीं, नहीं," सरस्वती चिल्ला उठी, "ऐसा न कहिए। मैं केवल विलास के लिए जीती हूँ, मैं केवल विलास की हूँ।"

वह रो दी। सत्यपाल को लगा, वह जड़ीभूत हो गया था। वह चुपचाप खड़ा रहा, उसकी सिसकियों को सुनता रहा। उसे आश्चर्य हुआ। क्या यह सत्य कहती है ? क्या प्रेम इतनी शक्ति रखता है ? हृदय ने स्वीकार नहीं किया।

"और तुम्हें कोई मोह नहीं ?" उसने पूछा। वह समझता था कि सरस्वती इसका उत्तर नहीं दे सकेगी और सत्यपाल अन्त में विजयी होगा। किन्तु उसकी आशा एक ही आघात से चूर-चूर हो गई।

"नहीं," सरस्वती ने दृढ़ता से कहा। इतना दृढ़ था वह शब्द, सत्यपाल को लगा कि वह शब्द एक पहाड़ बनकर बढ़ता चला गया और उसके पीछे कहीं सरस्वती छाया की तरह लुप्त हो गई।

"यह तुम सच कहती हो सरस्वती ? मैं सचमुच तुम्हारी इज्ज़त करता हूँ। मैं इस तूफान की कसम खाकर कहता हूँ कि जिस वक्त मैंने तुम्हें यहाँ आते देखा था, उस वक्त मैं तुम्हारे लिए पागल हो रहा था।" सत्यपाल का शरीर झनझना उठा। वह व्याकुल-सा दिखाई दिया। उसके नेत्रों में एक सुलगन थी। पर एकाएक वह फिर सँभल गया। उसने धीरे से अपनी बात पूरी की—"पागल हो रहा था सच है, लेकिन इस वक्त मैं उस वक्त से भी ज़्यादा पागल हूँ।" और फिर उसने अत्यन्त संयत स्वर से कहा—"और जो तुम कहोगी मैं उस पर पूरा भरोसा कर लूँगा। मुझसे झूठ न कहना। सच कहो, तुम्हें विलास के सिवाय कुछ नहीं चाहिए ?"

सरस्वती अडिग खड़ी रही। उसने कहा—"नहीं।"

नहीं ! वही शब्द। पहाड़ अब खो गया। अब सत्यपाल उसे पाने की सोच ही नहीं सकता। वह शब्द एक महासागर की तरह उन दोनों के बीच में फैल गया—अपार····विराट्····दूर····दूर-दूर तक····

उस दृढ़ता से सत्यपाल का हृदय दहल गया। जीवन एक आस्था के समान सुनहला है, यह उसने आज ही अनुभव किया।

"तुम उसे प्यार करती हो ?" सत्यपाल ने पराजित स्वर से पूछा। तो क्या सत्यपाल ही अन्धकार में था ?

"उसके सिवाय मैं कुछ भी नहीं चाहती," सरस्वती ने कहा, "उसके अतिरिक्त मैं और कुछ भी नहीं सोचती।"

सत्यपाल को लगा कि जीवन एक विश्वास ही नहीं, एक कल्याण-

मयी आशा पर स्थिति है—ऐसे जैसे किसी आस्तिक की मर्यादा ने अपनी सत्ता का बार-बार उद्घोष किया हो।

"तुम सच कहती हो ?" उसने पूछा। सरस्वती उसकी जिज्ञासा को शायद समझ गई। व्यक्ति अपने ही वातावरण से दूसरों को भी समझने की चेष्टा करता है। इस व्यक्ति ने कभी जीवन का सच्चा स्वरूप नहीं देखा। वह अपनी ही उलझन में निरन्तर भटक रहा है। सरस्वती ने उसी कठोर दृढ़ता से धीरे से कहा—"मैं झूठ कभी नहीं कहती। मालूम देता है तुमने औरत कभी नहीं देखी। तुम तभी अपने-आपसे डरते हो।"

सत्यपाल के होठ व्यंग्य से मुड़े, मुस्कराये।

"मैंने क्या नहीं देखा ?"

"औरत।"

"औरत ?" सत्यपाल मुस्कराया। उसका व्यंग्य प्रगट हो गया।

सरस्वती ने उसे मुड़कर देखा।

"मैंने ऐसी औरत भी देखी है जो अपने पति को छोड़कर भाग जाती है।" सत्यपाल ने कहा—"जानती हो, वह मेरी पहली स्त्री थी, जिसे मैं बहुत प्यार करता था। और," उसने स्वर बदलकर कहा—"मैंने वह औरतें देखी हैं जो चन्द चाँदी के टुकड़ों के लिए अपने-आपको बेच देती हैं।" घृणा उसके स्वर में कड़वी होकर अपनी घुटन से व्यक्त हो गई। फिर जैसे वह भूल गई। उसने सरस्वती के स्थान पर मनोरमा को देखा। फिर वह अपने-आप ही बुदबुदाया—"क्या नहीं देखा मैंने ? मैंने मनोरमा देखी है जो पल-पल में बदलती है। वह अपने-आपको सब पर हावी कर देना चाहती है। मैं....." वह सिहर उठा। फिर वही मुस्कराहट लौट आई। और उसने उसी व्यंग्य से बात पूरी की—"वह एक आँधी है, जब भी हिलती है दुनिया को हिला देना चाहती है। जिधर भी चलती है, सब-कुछ बरबाद कर देना चाहती है। मैं उसे देखता हूँ, समझ नहीं पाता कि यह क्या है ? क्यों है उसमें यह

उद्वेग, यह तृष्णा की कड़वाहट ?"

"यह सब औरतें नहीं हैं। यह सब पैसे की बरगलाहट में राह भूली हुई औरतें हैं," सरस्वती ने टोककर कहा। वह अब रो नहीं रही थी। पहले-जैसा गाम्भीर्य उसमें लौट आया था। कहती गई—"तुमने या तो गर्मी में सूख जाने वाले तालाब देखे हैं या फिर हाहाकार करने वाली बरसाती नदी। तुमने कभी गंगा नहीं देखी।"

बस। और कुछ नहीं कहा।

पानी बरसने लगा। दोनों भीगने लगे, फिर भी दोनों ने हटने की आवश्यकता नहीं समझी। कभी-कभी बिजली चमकती तो दोनों एक-दूसरे को देखते और वे खड़े रहे। आम का घना पेड़ अब झकझोरा हुआ-सा बराबर थर्रा उठता था। अन्धकार के यम-जैसे होंठ पृथ्वी और आकाश की भाँति हाँप रहे थे, और भयानक आँधी उसकी विराट् खुरखुरी जीभ की तरह काँप रही थी, जैसे सब-कुछ खा रही थी। पेड़ इसी भय से काँप रहा था कि अब वह खा लिया जायगा किन्तु वे दोनों शान्त खड़े थे।

"ठीक कहती हो सरस्वती! मैं इसका भी विश्वास करता हूँ। और इसलिए मैं तुमसे वादा करता हूँ कि मैं मनोरमा को लेकर शहर लौट जाऊँगा क्योंकि मुझे विलास के भाग्य से जलन हो रही है," सत्यपाल ने धीरे से कहा। फिर जैसे वह उत्तेजित हो उठा। उसने कहा—"विलास! सरस्वती विलास से प्रेम करती है।"

सरस्वती का हृदय कसमसाया।

"अगर कोई आदमी ऐसा भी हो सकता है जिसे तुम-जैसी स्त्री प्यार कर सकती है तो वह आदमी धन्य है," सत्यपाल ने कहा। उसके स्वर में पराजय नहीं थी, एक हर्ष की भावना थी। जैसे वह इस बात से बहुत प्रसन्न था। वह न सही, इस संसार में प्रेम अब भी कितना महान् था। उसने सिर हिलाकर कहा—"तुम घर जाओ।"

सरस्वती ने मुड़कर मुँह फेर लिया।

"तुम्हारा विलास अपने-आप तुम्हारे पास आ जायगा," सत्यपाल ने कहा। सरस्वती समझी नहीं। कहा—"आप कैसे जानते हैं?"

"मैं दौलत से मनोरमा को अन्धा कर दूँगा—इतना अन्धा कर दूँगा कि फिर वह विलास को भूल जायगी," सत्यपाल ने कहा। उसके स्वर में इतना निश्चित उल्लास था कि सरस्वती सचमुच चौंक गई। सत्यपाल ने इस पर ध्यान नहीं दिया। वह अपनी ही धुन में कहता गया—"तुम अपनी स्वामिनी हो सरस्वती! लेकिन एक बार कह दो कि अगर तुम मुझे प्यार नहीं करतीं तो भी एक अच्छा आदमी समझती हो, जिस पर दया कर सकती हो।"

"आप पर इसलिए दया करती हूँ क्योंकि आप मेरी दया की भीख माँगते हैं..." सरस्वती ने कहा। वह नहीं कह सकी, उसे ऐसा लगा जैसे उसके सामने एक अत्यन्त निरीह लगने वाला एक महान् व्यक्ति खड़ा था। इतना महान्! क्या विलास उसकी तुलना में मनुष्य था? किन्तु विलास फिर एक सुन्दर कल्पना बन चुका था।

"तुम जाओ सरस्वती! तुम्हें विलास की कसम है। घर जाओ। मैं रात को ही चला जाऊँगा।" सत्यपाल ने फिर कहा—"मैं रात को ही शहर चला जाऊँगा।"

सत्यपाल चला गया। तूफान में एक लरज आ गई थी। पानी का बरसना रुकता दिखाई नहीं देता था। सरस्वती वहीं स्तब्ध खड़ी रही। सत्यपाल दूर बिजली में एक बार चमका फिर अन्धकार में खो गया। सरस्वती घर की ओर चल पड़ी।

गाँव के लोग घरों में घुसे भगवान् की याद कर रहे थे। ऐसी बरसात से उनके कलेजे दहल गए थे।

उस समय विलास को देखकर मनोरमा ने कहा—"तुम्हें शहर चलकर मोटर चलाना सिखाऊँगी।"

"सँभलकर चलाओ मनोरमा," विलास ने घबराये स्वर से कहा, "देखती हो, पानी रास्ते पर भर गया है।"

मनोरमा को आनन्द आ रहा था। उसकी उत्तेजना के अनुरूप ही प्रकृति भी उद्वेलित दिखाई देती थी। हँसी। कहा—"अब सँभलने की ज़रूरत है। नहीं विलास! अब हम दूर नहीं हैं। अब तो पहाड़ी रास्ता अधिक नहीं है।" फिर कल्पना में मग्न होने के-से स्वर में मनोरमा ने कहा—"बहुत जल्द हम डान्सिंग स्कूल पहुँच जायँगे, जहाँ रीता और इन्द्रभान से मुलाकात होगी।" वह हँस पड़ी।

१६

शहर अपने राग-रंग में मस्त था। वहाँ सैकड़ों दौलत के मतवाले लाखों भूखों की पसलियों पर पाँव रखकर नाच रहे थे। उन्हें कभी अनुभव ही नहीं होता था कि वे ऐसी दुनिया के प्राणी थे जो इतनी भयानक थी।

थियेटर-हॉल में रोशनी हो रही थी। सीटों पर चमकता प्रकाश पड़ता और दीवारों पर बने तैलचित्रों से टकराता। बाहर लोग अपने काम में मशगूल थे। कोई-कोई दरवाजों के पास खड़े हँस-हँसकर बातें कर रहे थे। शो शुरू होने में अभी देर थी। पात्र और पात्रियाँ अपने-अपने मेक-अप में लगे थे।

भीतर ग्रीन रूम में रीता अकेली बैठी शृङ्गार कर रही थी। वह मालकिन थी, इसलिए उसके कमरे में आने की अन्य किसी को आज्ञा नहीं थी। आज उसने ही इन्द्रभान की सहायता से डान्सिंग स्कूल का यह नया खेल पेश करने का इन्तज़ाम किया था। इन्द्रभान ने धीरे से प्रवेश किया। रीता ध्यान में थी।

इन्द्रभान ने आँखें मीच लीं।

"क्या हुआ ?" रीता ने पूछा।

"क्या बात है ?" इन्द्रभान ने द्वार पीछे से बन्द करते हुए कहा।

रीता मुस्कराई। इन्द्रभान पास आ गया। रीता ने आँखों में सुरमे की सलाई डाली और नोंक खींच दी। उसकी आँखें अब कुछ बड़ी नज़र आने लगीं। फिर उसने कटाक्ष किया। इन्द्रभान का हृदय भीतर-ही-भीतर काँप उठा, पर ऊपर वह सुस्थिर बना रहा। वह आकर एक कुर्सी पर बैठ गया। रीता ने उससे कुछ कहा नहीं, केवल देखा। इन्द्रभान ने व्याकुलता से हाथ बढ़ाया, फिर झिझककर गर्दन पर फेरा जैसे वहाँ मच्छर था। उसने अपने रूप को सँभाल लिया। "मान लीजिए कि आपको मुझसे मुहब्बत हो गई है।" इन्द्रभान ने अपनी पुरानी चाल शुरू की।

"अच्छा, अभी आपके रिहर्सल ही चल रहे हैं, कोई नया मज़ाक कीजिए।" रीता ने मुस्कराकर कहा।

"हमारी-आपकी मुहब्बत से बढ़कर भी कोई मज़ाक हो सकता है ?" इन्द्रभान ने कहा। उसकी भौं में तनाव था।

रीता चोट समझ गई। जानती थी कि इन्द्रभान के मर्म पर आघात पहुँचा है। वह अपने को उससे खींचे रहकर ही उसका आकर्षण अपने पर केन्द्रित किया करती थी। लेकिन डोरा उतना ही खींचना था कि वह टूट न जाय। बात बदलकर कहा—"मिस्टर इन्द्रभान !"

इन्द्रभान ने उस मिस्टर में फिर एक अलगाव का भाव देखा। उसका मन भीतर-ही-भीतर जल उठा। उसने क्षण-भर उसकी ओर देखा। दिल ने कहा—'इन्द्रभान किस चक्कर में पड़े हो ? यह क्या किसी मर्ज की दवा है ?' पर फिर याद आया। 'यह सिर दर्द की वह दवा थी जो ज्यादा खाने पर सिर दर्द फौरन दूर करके दिल को कमज़ोर करती थी।' "जी हाँ मिस रीता !" उसने कहा। उसके स्वर का व्यंग्य बहुत ही स्पष्ट हो गया था।

मिस शब्द पर ज़ोर था जैसे उसने रीता के कौमार्य पर हमला किया था कि जानता हूँ, तुम्हारी असलियत पहचानता हूँ। पुरुष की यह एक प्रवृत्ति है कि अपने को तो वह अधिकारी समझता है और स्त्री को वही अधिकार नहीं देता।

"क्या मतलब ?" रीता चौंकी। फिर वह मुस्कराई। उस मुस्कान में एक तीखी कड़वाहट थी। कहा—"क्यों इस क़दर नाखुश हो ?"

"मैं ? नहीं तो," इन्द्रभान ने सकपकाकर कहा, "क्यों ? मैंने ऐसा क्या कह दिया जो आप यह समझ बैठीं ? जब दुनिया में इज्जत नहीं ही मिलती है तो मज़ा भी क्यों छोड़ा जाय ?"

रीता ने कहा, "अगर मैं शरीफ़ बनूँ तो लोग मुझे शरीफ़ मान लेंगे ?" फिर उसने मुड़कर कहा—"तुम मुझे बड़े अच्छे मालूम देते हो।"

इन्द्रभान ने पूछा—"क्यों ?"

"जिस लिए तुम," उसने कहा, "मुझे चाहते हो, दुनिया का हर आदमी चाहता है। पर तुम भले हो कि मेरा कुछ काम भी करते हो, दुनिया वाले वह काम भी नहीं करना चाहते। मुफ्त ही मुझे····"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं," इन्द्रभान ने कहा, "क्या सोच रही हैं आप ? क्या चाहते हैं आपसे दुनिया वाले ? और मैं क्या चाहता हूँ ?"

उसने रीता की ओर अनबूझ बनकर देखा। रीता झेंप गई। वह क्या चाहता है, पर क्या उसे रीता कह सकती है ?

"मैं कहता था—आज का शो ऐसा हो जाय कि आप आज देखने वालों के कलेजों पर नज़रों के वार करें। अमरीका में जानती हैं, हाँ, वह नंगा नाच होता है, कि शर्म आती है कहते हुए। पर मजबूरी है, औरतों ने खुद ही तो अपने को बेचा है। जो हो आपकी सफलता का एक ही तरीका है—लोगों पर जादू करना, और सबसे आसान तरीका है—जवानी का सुरूर बरसाकर उल्लू बनाना, बरना याद रखें···"

इन्द्रभान ने स्वर खींचा, "सब ठाठ धरे रह जायँगे। यह छोकरे और

छोकरियाँ तथा अखबार वाले सब ऐसे उड़ा देंगे आपको जैसे गधा कान पर से मक्खी। घायल करो देखने वालों को। बड़े बेरहम होते हैं यह लोग, कहीं हम पर जूतों के वार न कर बैठें। उस वक्त आप तो छिप जायँगी, पर इन्द्रभान बेटा फँस जायँगे और अपनी किस्मत को जिन्दगी भर रोएँगे....।"

रीता हँस दी। कहा—"एक ही मज़ा रहेगा।"

"मज़ा रहेगा?" इन्द्रभान ने कहा—"आपको मज़ा आयेगा। मुझ पर जूते पड़ेंगे?"

बड़ी सुखद कल्पना थी। रीता फिर हँसी और बोली—"सचमुच! उस वक्त तुम्हारी शक्ल देखने लायक होगी।"

एक लड़की भीतर आई।

"क्या है?" रीता ने पूछा।

"लड़कियाँ चाय चाहती हैं।" लड़की ने कहा।

"इन्तज़ाम नहीं हुआ?" इन्द्रभान ने कहा, "स्टेज-मैनेजर से कहो।"

लड़की चली गई।

"अभी देर है," रीता ने कहा।

"किसमें?" इन्द्रभान ने पूछा।

"शो शुरू होने में।"

इन्द्रभान कुत्ते की तरह बैठा था। बोला—"रीतादेवी! क़सम से डान्सिंग स्कूल की मालकिन तो आपको होना चाहिए था। मनोरमा! अब क्या है उसमें? पुराना फूल है। बस, उसमें तो अकड़ है, अकड़। आपका-सा भोलापन? रीतादेवी, एक बात कहूँ, अगर आप सुनकर नाराज़ न हों।"

रीता मुस्कराई। कहा—"कहिए।"

"अब आपने पूछा है तो कहता हूँ," इन्द्रभान ने कहा, "चेहरे पर संगमरमर की ज़रूरत नहीं। असल में नमक होना चाहिए।

आपमें है।"

घड़ी में घण्टा बजा।

"देखिए घण्टा बजा।" इन्द्रभान ने हाथ से घड़ी की ओर इशारा किया। "मेरी बात की ताईद हो गई।"

रीता हँस दी। कहा—"बड़े शैतान हो।"

"अब आप कपड़े पहन लीजिए मिस रीता," इन्द्रभान ने कहा, "फिर ज़रा बाहर चलकर मुआयना कीजिए। यों काम नहीं चलेगा। मालिक मैं नहीं हूँ, आप हैं। मैं तो आपका एक अदना गुलाम हूँ। जो आपका रौब पड़ेगा, वह मेरा नहीं पड़ सकता। अरे आप इतनी ही भोली न होतीं तो क्या मनोरमा आप पर इस तरह हुकूमत कर लेती?"

"मुझे कुछ थकान-सी आ रही है," रीता ने कहा। वह अब इस चापलूसी से कुछ ढीली हो गई थी। उसका मन मालिक हो गया था। और जो मेहनत करता है उसका अक्सर यह खयाल होता है कि मालिक का मतलब है कोई काम न करना, बैठे-बैठे हुक्म चलाना।

"अभी आपने मेहनत ही क्या की है?" इन्द्रभान ने चौंककर कहा। "आपने किया ही क्या है?"

"कुछ नहीं, करूँगी भी नहीं," रीता ने एक अँगड़ाई ली और फिर उसकी ओर अधमिंची आँखों से देखा।

"रीतादेवी, मैं आपको छोड़कर चला जाऊँगा," इन्द्रभान ने कहा, "आप अपना फ़ायदा-नुकसान खुद सोचती नहीं। आखिर आप इतनी सीधी हैं क्यों? मान लीजिए मनोरमा लौट आई तो इस जगह मनोरमा होगी और आप लड़कियों की भीड़ में दिखाई देंगी। मैं तो चला जाऊँगा।"

"चले जाओ," रीता ने कहा, और आँखों को उस पर गड़ा दिया। औरत के रूप का घमण्ड तलवार बनकर, अपने-आपको मर्द की चापलूसी के पानी से, बरबादी के पत्थर पर घिसकर पैना कर रहा था। रीता समझ रही थी कि इन्द्रभान घायल हो रहा है।

"सच कहती हो ?" इन्द्रभान को ठेस-सी लगी। पर वह हरफ़न था। समझ गया कि यह भी एक ज़ालिम अदा है—नहीं माने हाँ, जाओ माने आओ।

"जाता हूँ," कहकर वह चला गया।

"सुनो," रीता ने कहा। पर उसने नहीं सुना।

रीता खड़ी हो गई। उसे लगा, इन्द्रभान नाराज हो गया था। क्या डोरा टूट गया ? फिर क्या होगा ? तभी इन्द्रभान फिर भीतर आया और द्वार में अब की बार उसने बन्द करके चिटखनी चढ़ा दी। रीता समझकर भी नासमझ-सी पूछ बैठी—"क्यों बन्द करते हो उसे ? मुझे डर लगता है।"

इन्द्रभान बोतल ले आया था। उसने खोली और प्याले अलमारी से निकालकर उँडेली और कहा—"लो पियो। थकान मिट जायगी।"

"नशा आ जायगा ?"

"इतनी-सी मैं ?"

दो पेग पीकर रीता को सुरूर आया। आँखों के कोनों पर गुलाबी दिखाई दी।

इन्द्रभान ने कहा—"तुमको पीने की आदत नहीं, मनोरमा खूब पीती है। वह औरत बड़ी चलती हुई है। तुम ? तुम तो किसी का घर बसाकर चूल्हा फूँकती तो अच्छा रहता। तुम इतनी सीधी न बनो रीता ! दुनिया तुम्हें खा जायगी।"

उस समय इन्द्रभान ने उसे आँखों में भर लिया। रीता अपने-आपको भूल गई थी। चेतना का, सत्-असत् का ज्ञान शराब ने छीन लिया था।

जब घण्टी बजी वे दोनों चौंक उठे।

रीता ने जल्दी से पाउडर लगाया। पफ रखकर आँखों में फिर सुरमा लगाया।

"अरे !" कहकर उसने होठों पर फिर लाली लगाई। इन्द्रभान ने

अपने होठों पर जीभ फेरी और ब्रश उठाया।

इन्द्रभान उसके बालों में पिन लगाने लगा। उसके बाल अब उठ गए थे, फैल गए थे जैसे कोई छतरी थी। उनमें से सुगन्ध आ रही थी, यद्यपि उनमें तेल नहीं था। वे देखने में रेशमी मालूम देते थे।

"जाओ, मैं कपड़े बदलूँगी," रीता ने उठते हुए कहा।

"हाँ, मैं जाता हूँ। अरे, क्या आदमी हूँ! यहीं बैठा हूँ अभी तक!" वह उठा। द्वार पर जाकर तब इन्द्रभान हँसा। उसने व्यंग्य से कहा—"तुम्हें मेरे सामने शरम जो आयेगी।"

रीता के कान तक लाल हो गए।

१७

तूफ़ान भयानक हो उठा था। जब सत्यपाल खेतों में चला तब उसके पाँव टखने-टखने तक पानी में भीगते गए। पर वह तेज़ी से चलता रहा, कहीं भी रुका नहीं। बूँदें माथे और सिर पर टकरातीं, बहने लगतीं।

अँधेरा घनघुप्प। कोई रास्ता नहीं दिखता। गड्ढों में पानी भर-कर उपट गया है। पता नहीं, कहाँ पाँव धरने से नीचे धरती मिलेगी, कहाँ नहीं मिलेगी। कभी-कभी जब बिजली चमकती है तो पानी-ही-पानी दिखाई देता है।

डेरे उड़ गए थे। सत्यपाल ने देखा वहाँ जिस आबादी को वह छोड़ गया था, उसके खण्डहर पड़े थे। तो फिर क्या हुआ सबका? मनोरमा? वह ज़रूर इन्हीं डेरों के नीचे पड़ी होगी। सत्यपाल को

अपने ऊपर ग्लानि हुई। बेचारी मेरे लिए पुकार-पुकारकर थक गई होगी। फिर भी मैं लौटकर नहीं आया।

अन्धकार में सत्यपाल चिल्ला उठा—"रामदीन ! रामदीन !"

हवा ने थपेड़ा दिया। स्वर डूब गया। अँधेरे में पानी के बहने की आवाज आई।

कोई उत्तर नहीं आया। ध्यान आया—अब मैं मनोरमा के मन की करूँगा। उससे शादी कर लूँगा। कितनी खुश होगी वह ! सरस्वती को देखकर उसका घृणा करना भी उचित ही है। आखिर वह कैसे सहे !

बिजली चमक रही थी। डेरे दिखाई दिए। कुछ सामान बाहर बिखर गया था। मनोरमा का क्या होगा अब ? कहीं मर न गई हो ? मैं दोनों तरफ़ से लुट जाऊँगा। मनोरमा सचमुच मुझे प्यार करती है, नहीं तो कभी उपेक्षा से नाराज़ नहीं होती। पर क्या करे बेचारी ? सत्यपाल फिर चिल्लाया—"रामदीन !"

स्वर दूसरी बार बड़ी देर तक गूँजा, हवा में मँडराया। सत्यपाल जी भरकर चिल्लाया।

गाँव वालों को अभी इकट्ठा करना होगा। कोई परवाह नहीं कितना रुपया खर्च होता है·····

"मालिक !" क्षीण स्वर दूर सुनाई दिया। फिर वह पास आता हुआ लगा। सत्यपाल फिर पुकार उठा—"रामदीन !"

हवा पर स्वर तैरा—"मालिक हो ऽ ऽ ऽ ऽ····"

सत्यपाल हँसा जैसे अब कामना पूरी हो जायगी। मनोरमा का हाल क्या होगा·····

बिजली कौंधी। पेड़ दिखे, बरसता पानी दिखा, डेरे दिखे, पर आदमी फिर भी नहीं दिखाई दिया।

"मालिक हो ऽ ऽ ऽ····" कोई फिर चिल्लाया।

सत्यपाल ने देखा, दूर कोई आ रहा था। वह रामदीन ही होगा। इस तूफान में और कौन आ सकता है ? जल्दी आ जाय तो

कोशिश कर देखें।

फिर सत्यपाल से रुका नहीं गया। स्वयं डेरों के पास गया। कीचड़ में पाँव रखा तो धँस गया। खींचकर बाहर निकाला तो कीचड़ की चीत्कार करती आवाज़ सुनाई दी। सत्यपाल समझा, मनोरमा कराह उठी है।

वह गम्भीर खड़ा रहा। आ जाने दो रामदीन को। जल्दी नहीं आता बेवकूफ।

"कौन है? वहाँ?"

"मैं हूँ मालिक!"

छाया पास आ गई। रामदीन था।

"कहाँ गया था तू?"

"सरकार मैं....."

बात पूरी करने के पहले ही सत्यपाल ने कहा—"ठीक है। हाँ, अरे....अब क्या करना चाहिए....."

"बीबी दब गई होंगी, बेवकूफ," सत्यपाल ने घबराकर कहा।

"नहीं सरकार!" रामदीन ने अपराधी के स्वर में कहा। फिर एका-एक पुकार उठा—"सरकार, आप बिलकुल भीग गए हैं। रात है, कहीं सिर छिपा लेते। आसमान फट पड़ा है....."

तूफान ने अँधेरे के डंके पर चोट की और गरजा। बड़ी जोर से बिजली कड़की और आसमान से धरती तक खड़ी नागिन-सी काँप उठी।

"और मनोरमा कहाँ है? उसे भी तो इस ढेर से निकालना है?"

रामदीन चुप रहा। फिर घबराया-सा बोला—"गाँव वालों को बुला लूँ? सब आयेंगे तो ठीक रहेगा। सरकार उन्होंने मुझे आपको ढूँढ लाने भेजा था।"

मन ग्लानि से अकुला उठा। तो वह बुलाती रही? वह नहीं आया। सत्यपाल ने आतुरता से पूछा—"क्यों? क्या वह अकेली घबरा रही थी?"

रामदीन ने कहा—"सरकार....जी हाँ, बहुत घबरा रही थीं, मैंने कहा

था···वे अकेली नहीं थीं, नहीं सरकार, मास्टर साहब भी थे, तभी मैं उन्हें छोड़कर चला गया था वरना क्या तूफ़ान में उन्हें अकेली छोड़कर चला जाता ! कभी नहीं सरकार ! तूफ़ान तब शुरू ही हुआ था, बड़ी घटा उमड़ी थी सरकार····"

सत्यपाल आगे बढ़ा। क्या सुना है उसने ?

बीबी के साथ····

मास्टर····

क्यों ?·····

"अरे मोटर कहाँ है ?" सत्यपाल ने चौंककर पूछा। जिस जगह होनी चाहिए थे, वह जगह खाली थी।

"यहीं तो थी सरकार," रामदीन ने कहा। वह स्वयं आगे बढ़ गया। "यहीं तो थी सरकार," उसने फिर कहा।

वह काँप गया—"तो क्या कोई ले गया ?"

सत्यपाल के सिर में गर्मी से चक्कर-सा आने लगा। धारासार पानी भी उसके आवेश को ठण्डा नहीं कर पा रहा था।

"यहीं थी ?" उसने कहा—"तू छोड़कर गया था ?"

"हाँ सरकार !"

"फिर कोई आया था ?"

गाड़ी के पहियों की लीकों में पानी भर गया था। लीक सामने से मुड़ गई थी।

"गाड़ी कोई ले गया सरकार ?" रामदीन ने डरकर पूछा। फिर अपने-आप बुदबुदाया—"सरकार, हम तो गरीब आदमी हैं, इतनी हमारी मजाल कहाँ, सरकार !"

सत्यपाल की समझ में आने लगा—गाड़ी नहीं है। वह अकेली न थी। लीक इधर मुड़ गई है। मोटर की चाबी उसके तकिये के नीचे थी····

विलास···था···रामदीन को भेज दिया···काँटा दूर हो गया···फिर

तूफ़ान ने कुछ कहा। अस्फुट शब्द-से गूँजे।

'तो वह चली गई,' उसने सोचा।

प्रतिहिंसा! सीमा का उल्लंघन करने वाली तृष्णा! क्यों? क्या है सत्यपाल की? वह क्या उसके बाप की मोटर थी?

सत्यपाल को क्रोध आने लगा। ममत्व को घृणा का पिशाच ठोकर मार-मारकर निकालने लगा।

"मालिक!" रामदीन ने कहा।

सत्यपाल ने नहीं सुना। उसने फिर दुहराया।

"क्या है?" सत्यपाल चौंका।

रामदीन इस चोरी से थर्रा उठा था। उसने धीरे से कहा—"बड़ा तूफ़ान है। आप चलकर गाँव में किसी के घर रात काट लेते····"

सत्यपाल ने कहा—"नहीं। तुम जाओ····"

"मैं तो चला जाऊँगा सरकार, पर आप क्या यहीं रहेंगे? बीबी की फिकर न करें सरकार! बीबी किसी के घर चली गई होंगी। यहाँ तूफ़ान में कहाँ रहतीं?"

"रामदीन!" सत्यपाल पुकार उठा।

"सरकार!" रामदीन डर गया।

"नहीं रामदीन! बीबी गई····" सत्यपाल का स्वर घुट गया।

बीबी सचमुच चली गई थी। अब वे बहुत दूर आ गए थे। पहाड़ी रास्ता बड़ा खतरनाक था। टायरों के दाँतों में कीचड़ भर गई थी। जब पहिये चलते तो छींटे उड़ते। विलास स्तब्ध बैठा था।

हवा मोटर के बन्द शीशों से टकरा रही थी। बरसती मेंह की बूँदें सामने के शीशे पर इकट्ठी होतीं और बराबर साफ़ होती जातीं। वह इतना तेज़ काम था कि विलास देखता रहा। उसके हृदय पर ऐसे ही बार-बार बूँदें इकट्ठी होती थीं, बार-बार साफ़ हो जाती थीं। उसको सरस्वती याद आती, फिर सत्यपाल का रूप सामने खड़ा होता, और

फिर मनोरमा का ध्यान जग उठता।

कार तेज़ चली जा रही थी। रेडियो बन्द कर दिया था क्योंकि घर्र-घर्र में कुछ सुनाई नहीं देता था। फिर तूफ़ान के शोर में वह शोर दुगनी हलचल पैदा कर रहा था। विलास सामने गम्भीर दृष्टि से देखता हुआ कभी-कभी मनोरमा को कनखियों से देख लेता। एक नाचने वाली स्त्री के साथ जाते हुए क्या वह ठीक कर रहा है? कहाँ ले जा रही है यह?

"रोको....." विलास चिल्ला उठा, "धीरे चलाओ मनोरमा! पहाड़ी रास्ता है, ज़रा भी गाड़ी फिसली तो खड्डों में पता भी नहीं चलेगा।"

"नहीं विलास....." मनोरमा ने कहा, "डरते हो?"

"डरता तो नहीं हूँ, पर....."

"पर? फिर चिल्लाते क्यों हो?"

वह हँस रही थी।

"कभी-कभी तेज़ दौड़ना भी अच्छा लगता है। क्यों? ग़लत कहती हूँ?"

उसने विलास की ओर मादक दृष्टि से देखा।

विलास थर्रा उठा।

सामने की पहाड़ी उठी और फिर वह पास आते-आते और बड़ी नज़र आने लगी।

पानी का भयानक वेग अब और भी बढ़ गया था। ऐसा लगता था कि समुद्र आकाश में आकर इकट्ठा हो गया है और अब जैसे कोई बाँध टूटा है जो सब-कुछ जलमग्न हुआ जा रहा है।

सत्यपाल बड़ी चिन्ता में खड़ा रहा। उसके विचार उखड़े-उखड़े-से एक के बाद एक आये....विलास....चला गया....तो गई....मनोरमा.... क्यों....जलन से....फिर....उसकी प्रतिज्ञा....सारी ज़िन्दगी झूठ है....झूठ में एक बार सचाई....और फिर सरस्वती....सरस्वती....सरस्वती....

तूफ़ान ने ठहाका लगाया—'सरस्वती ऽ ऽ ऽ....'

उसने सरस्वती के घर में प्रवेश किया। द्वार खुले थे। वह भीतर घुस गया। बाहर के आँगन में पानी भर गया था। सामने के छप्पर पर जो धाराधार वर्षा हो रही थी तो पानी छप-छप करता और बगल की छत का परनाला तड़-तड़ करता गिर रहा था। सत्यपाल उसके बगल से होकर चबूतरे के पास पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही बिजली बड़ी ज़ोर से कौंधी। उसकी आँखें मिच गईं। जब कुछ देर बाद आँखें खुलीं तो सत्यपाल ने देखा कि उसके पास ही, दो हाथ की दूरी पर, सरस्वती एक खम्भा पकड़े खड़ी थी। उसके हाथ पर पानी की बूँदें टपक रही थीं। वह शान्त थी, निस्तब्ध, जैसे यह सारा तूफ़ान भी उसे दबाने में असमर्थ था। 'क्या था इस गाँव की लड़की में,' सत्यपाल ने सोचा, 'जो यह ऐसी अपराजित है? शिक्षा····' सत्यपाल ने सोचा, फिर सिर हिलाया। 'पढ़े-लिखे स्वार्थ के लिए बड़े जघन्य हो जाते हैं।'

वह भीगी ही थी। अभी उसने अमराई से आकर कपड़े बदले नहीं थे। उसे शायद यह सब सोचने की फ़ुरसत भी नहीं मिली थी।

सत्यपाल दब गया। कैसे कहे?

वह अभी वादा करके गया था। कैसे टूट गया है उसका वह सुपना?

मनोरमा····

पर फिर भी उसे कहना ही होगा।

सत्यपाल ने कहा—"सरस्वती!"

सरस्वती ने मुड़कर देखा।

सत्यपाल एकदम नहीं कह सका। उसकी बात गले में अटक गई। फिर उसने कहा—"दिल को कड़ा कर लो सरस्वती! मैं ऐसी ही बात कहने आया हूँ। शायद तुम सुनकर सँभल नहीं सकोगी। चाहो तो कह दूँ?"

सरस्वती ने उत्तर नहीं दिया।

सत्यपाल ने फिर कहा—"विलास को लेकर मनोरमा मोटर में

शहर भाग गई है।"

उसे आश्चर्य हुआ। सरस्वती ने कुछ नहीं कहा। वह बिलकुल वैसी ही खड़ी रही।

"तुमने सुना नहीं ?" सत्यपाल ने फिर कहा। वह समझा, अब की बार सरस्वती उस पर टूट पड़ेगी। कहेगी—'यह सब तुम्हारा ही दोष है। तुम्हीं उस नाचने वाली स्त्री को लाये थे, तुमने ही उस स्त्री की प्रतिहिंसा को इस तरह मेरे पीछे घूम-घूमकर भड़काया था.....'

सरस्वती फिर भी नहीं बोली। वह इस समय भी वैसी ही प्रशान्त दिखाई दे रही थी, जैसे उसके राग-द्वेष या तो सब बुझ गए थे या उसमें अब कोई चेतना नहीं रही थी। सत्यपाल दिल में कुछ डरा। क्या यह पागल हो गई है ? वह उसे घूरता रहा, उसकी आँखों को देखता रहा। वहाँ कोई घबराहट नहीं थी। सत्यपाल चौंका।

"फिर कहता हूँ, मनोरमा विलास को लेकर शहर भाग गई है।" सत्यपाल की बात लौटकर सत्यपाल के ही मुँह पर बज उठी।

सरस्वती चुप रही।

"तुमने सुन तो लिया न ?" उसने कहा, "पर इतना बुरा सत्य है कि सुना-न-सुना एक हो गया ?"

सत्यपाल हँसा।

सरस्वती फिर भी नहीं बोल सकी। उसे लगा, उसका गला रुँध गया था। अब शायद वह चाहकर भी कुछ नहीं कह सकेगी।

सत्यपाल ने कठोर स्वर से कहा—"सरस्वती ! ज़िन्दगी में उतार भी हैं, चढ़ाव भी हैं। वे चले गए, शायद यह बात तुम सुनना नहीं चाहतीं।"

सरस्वती ने सिर झुका लिया।

बिजली चमक उठती। पानी का वेग कभी बढ़ता, कभी घटता, पर हवा कम नहीं होती। जब कभी साँपिन की तरह बिजली आसमान में छिटककर फरफराती, आँखें झपक जातीं और चिलबिल बूँदें चमक

उठतीं।

हवा थरथराती, गीले वस्त्रों पर बजती तो काटने लगती। बड़ी ठण्डी थी। आकाश आज जल-जलकर बरस रहा था। उत्ताप और तृष्णा दोनों गलबाँही डालकर नाच रहे थे।

"सुन चुकी हूँ," सरस्वती ने धीरे से कहा।

केवल इतना ही। सत्यपाल चकित हो गया।

अभिव्यक्ति की चरम सीमा मौन है।

"और तुम कुछ कहना नहीं चाहतीं ?" पूछा।

सरस्वती फिर चुप हो गई थी। सत्यपाल ठिठका-सा खड़ा रहा। फिर पुकारा—"सरस्वती !"

सरस्वती ने फिर धीरे से ही कहा—"क्या है ?" वह फिर एक घोर असमंजस में पड़ी थी। वह कहती रही—"मेरे पास कहने को है क्या ?"

सत्यपाल ने कहा—"सरस्वती ! तुम निस्सन्देह गौरव हो।"

"झूठ न कहो," सरस्वती ने फुसफुसाया, "यह नहीं, यह नहीं। जो मैं हूँ वह अपने-आप में पूर्ण नहीं है।"

"सरस्वती ! तुमने मुझे फिर हराया है।"

"आज मैं हार गई हूँ। मनोरमा अपना क्रोध दिखाकर चली गई है। मेरा क्या है ? कुछ नहीं।"

"वह मेरी ही रहेगी और विलास मैं तुमको ज़रूर लौटा दूँगा।"

सरस्वती ने इसका उत्तर नहीं दिया। सत्यपाल ने देखा कि वह चुप नहीं थी। हृदय में द्वन्द्व था।

"विश्वास करती हो ?" पूछा।

सरस्वती ने सिर हिलाया। सत्यपाल ने कहा—"साफ कहो।"

"करती हूँ।"

"किसका ?"

"तुम्हारा।"

"सच कहती हो सरस्वती ? यह मैं ठीक सुन रहा हूँ ?"

"हाँ।"

सत्यपाल को लगा, वह सह नहीं सकेगा। उसने फिर अत्यन्त आश्चर्य-भरे स्वर से उससे कहा—"तुम मुझ पर विश्वास करती हो ?"

सरस्वती ने धीरे से कहा—"अविश्वास क्यों करते हो ?"

सत्यपाल कुछ पीछे हट गया। अन्धकार ने उसे घेर लिया था। पानी की बूँदों का स्वर तोड़कर कहा—"लेकिन पूछ सकता हूँ कि तुम मुझ पर विश्वास क्यों करती हो ?"

उसका हृदय इस समय उच्छ्वसित उमंग से काँप रहा था। क्या वह फिर एक नये मोड़ पर आ गया था ?

"क्योंकि अपने ऊपर भरोसा करती हूँ," सरस्वती ने उसी धैर्य से कहा, जिससे वह पहले बातें कर रही थी।

सत्यपाल ऊँचे से गिरा, फिर सँभल गया।

"मैं जीतकर भी हार गया सरस्वती ! आज तुम्हारा विश्वास मेरा विश्वास बन गया है। तुम चाहो तो छिपा सकती हो," उसने कहा। उसके स्वर में एक कम्पन था, एक घुटन थी जो अब हृदय का हल्कापन बनकर प्रगट हुई थी। वह शायद दीवार से टिक गया था। इतना उद्वेग उसके लिए सम्भवतः अधिक हो गया था।

"मेरे लिए इतना ही काफी है," सत्यपाल तूफान में बड़बड़ा उठा।

सरस्वती अपने ध्यान में जो सुन सकी वह दूरस्थ पुकार-सा उसे सुनाई दिया, जैसे कोई क्षितिज के पार उतरते हुए अन्तिम बार चिल्ला-कर कह रहा था—"सरस्वती ! यह सत्य है। तुम मुझसे प्रेम करती हो।"

एक चीख़ उठी। सरस्वती की अन्तरात्मा किसी ऐसे आवरण में छटपटा रही थी जिसने उसकी साँस को घोंटना प्रारम्भ कर दिया था। वह उसे शीघ्र ही तोड़कर अपने को मुक्त करना चाहती थी। शब्द

रज्जुजाल हैं, शब्द ही उन्हें काटने वाली तलवार हैं। उसने कहा—"नहीं, यह झूठ है।"

"तुम झूठ कहती हो, सरस्वती!" सत्यपाल शायद अब दीवार का सहारा छोड़ चुका था।

"औरत ज़िन्दगी में एक बार प्यार करती है," सरस्वती ने कहा, "बार-बार नहीं, क्योंकि वह प्यार को जीवन की पवित्रतम अनुभूति समझती है। वह उससे खिलवाड़ नहीं करती। मुझे लगता है, तुमने औरतें देखी हैं, उनके दिल नहीं देखे। तुमने उन्हें अपने विलास की वस्तु समझा है और साथ ही तुमने उनसे ईमानदारी का भी मोल-तोल किया है। दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं।"

"वे नाचने वाली औरतें बुरी नहीं हैं," उसने रुककर कहा, "वे असल में भूली हुई हैं, क्योंकि उन्हें अपनी असलियत को भूल जाने के लिए मजबूर किया गया है। जानते हो क्यों? क्योंकि वे पैसे की गुलाम हैं, वैसे ही जैसे पुरुष। एक गुलाम दूसरे गुलाम को लूटता है।" तिक्त उपहास सरस्वती के होठों पर आया। कहा—"तुम्हारे पास धन है, तुम समझते हो कि जो चीज़ भी चाहो वह तुम खरीद सकते हो, उसकी कीमत देकर उससे सिर झुकवा सकते हो।"

"स्त्री यदि इतनी ही असहाय है तो वह प्रेम करती ही क्यों है?" सत्यपाल ने खीझकर कहा।

"क्योंकि उसके भी हृदय होता है।"

"पर तुम मुझसे प्रेम करती हो," सत्यपाल ने कहा, "मैं जानता हूँ, तुम इसे छिपाना चाहती हो। तो छिपाओ, मुझे इससे कोई ऐतराज नहीं है। पर यह भी अनेक सत्यों में एक सत्य है।"

"नहीं," सरस्वती ने कहा, "यह एक भ्रम है, अपने को धोखा देने का एक मीठा जाल है।"

"यह झूठ नहीं हो सकता। अगर यह झूठ होता तो मैं इस तूफान में शहर जाने को तैयार क्यों होता?" सत्यपाल ने आगे बढ़कर

कहा। वह समझता था, सरस्वती उसके इस वाक्य से अवश्य चौंक उठेगी, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ।

"मेरा फ़र्ज़ मेरे साथ है, तुम्हारा तुम्हारे साथ," सरस्वती ने गम्भीरता से कहा।

"मनोरमा विलास को ले जाय इसमें मेरा अपराध क्या है सरस्वती ? मैं तो नहीं ले गया।"

"यह सत्य है पर कर्तव्य अपराध से प्रारम्भ नहीं होता।"

"तुम एक सच्ची स्त्री हो सरस्वती ! मैंने आज तक तुम-जैसी स्त्री नहीं देखी," सत्यपाल ने कहा, "स्त्री का स्वाभिमान ही उसके जीवन का सबसे बड़ा गौरव है, मातृत्व नहीं। मातृत्व उसका प्राकृतिक कार्य है। उसमें उसका कुछ अपनापन नहीं है। स्त्री आत्म-समर्पण करके सबसे बड़ा अपराध करती है। मैं इस दुनिया में खुशी ढूँढने निकला था, लेकिन मैं दलदल में डूब गया। तुम-जैसी पवित्र और महान् स्त्री की सेवा से अपने पापों को अगर मैं धो सका तो मेरा जीवन भी धन्य हो जायगा। मैं जाता हूँ।"

वह चबूतरे से नीचे उतरा तो पानी से भीगने लगा। तब सरस्वती को अनुभव हुआ कि वह क्या कर रहा है ? कितना भयानक है यह तूफान···क्या यह इसमें पैदल जायगा ?

"इस तूफान में····" उसके मुँह से निकला।

तूफान अचानक ही अट्टहास कर उठा।

"मेरे भीतर इससे भी बड़ा तूफान है," सत्यपाल ने कहा, "सरस्वती, मैं क्या इससे डर सकता हूँ ? इसे सत्यपाल कुचल सकता है। रास्ता भी तो ज्यादा नहीं।" उसने हँसकर अँधेरे की तरफ इशारा करके कहा—"तुम डरो नहीं, मैं अपना काम जानता हूँ। पहाड़ी सड़क से नहीं, सीधे खेतों से जाऊँगा। दस मील ही तो होगा। मुझे जल्दी जाना चाहिए।"

अन्धकार में वह चला गया। सरस्वती को कुछ दूर तक उसके

पैरों की छपछप सुनाई दी। उसके बाद वह घर से निकल गया।

तूफान तड़का।

बिजली चमकी।

सरस्वती ने पुकारा—"सत्यपाल !"

सत्यपाल !! स्वर हवा पर तैरा।

सत्यपाल के हृदय का दाह बुझा।

"तुम न जाओ," वह चिल्ला उठी।

वह भागने लगी।

"तुम न जाओ····विलास मेरा है, मैं उसे ले आऊँगी।"

बिजली की चमक में सत्यपाल ने देखा, सरस्वती भागी आ रही थी, बेतहाशा भागी चली आ रही थी। अमराई में वर्षा ने दलदल कर दी थी। सरस्वती वहीं आ पहुँची।

आम का पेड़ खड़ा था—वही आम का पेड़ जिसके नीचे सरस्वती आज ही शाम के धुँधलके में रोई थी।

"रुक जाओ सरस्वती !" सत्यपाल दूर से चिल्लाया।

"नहीं, नहीं, मैं जाऊँगी····" सरस्वती बढ़ी।

सत्यपाल चिल्ला उठा—"विश्वास करो सरस्वती !" सरस्वती ठिठकी।

"सत्यपाल झूठ नहीं कहता, तुम्हें तुम्हारे प्रेम की कसम····"

सरस्वती ने देखा—वही पेड़, वही साक्षी, वही तो है। उसी की छाया में खड़ी है, उसी के नीचे। उसकी आँखें फट गईं। सत्यपाल इसी प्रेम के साक्षी की शपथ दे रहा है। सरस्वती सिहरकर काँप उठी। वह रुक गई।

सत्यपाल फिर पुकार उठा—"तुम्हें तुम्हारे जीवन काका की कसम··· मैं उसे कभी दगा नहीं दे सकता····"

क्या सुन रही है सरस्वती। 'जीवन काका ? क्या यह उन्हें जानता है ? तो यह है कौन ?'

'मालिक !'

शब्द बजा। इतना महान्····

वह स्तब्ध खड़ी रही, फिर वह बड़ी ही वेदना से चिल्ला उठी—"मैं नहीं आऊँगी, तुम जाओ। मैं इसी आम के नीचे बैठी तुम्हारा इन्तजार करती रहूँगी। विलास को लौटा दो····विलास को मुझे लौटा दो····"

सत्यपाल चल पड़ा। तूफान और प्रचण्ड हो गया था। उस कठोर निनाद का घन ऊभचूभ होकर उतराते अन्धकार के कारण निरन्तर बढ़ता चला गया। दूर तक वही खेत, घुटनों-घुटनों पानी। आकाश में अब कुछ टकराया और ऐसा लगा कि एक भयानक विस्फोट हो चुका है जिसकी रोर के मिटने के पहले ही दूसरा विस्फोट होगा—कालकुहर का घनघोर निनाद जैसे काँच की काली गुफा में। शब्द भौंरे-जैसा गुन-गुनाता, टकराता, चक्कर खाता बढ़ता चला जायगा और जब उस गोल गुफा के अन्त में दीवार से जाकर कहीं रुक जायगा तो तीन बार ऊभचूभ-सा अपने बालों को बिखराकर अपने प्राण नष्ट करने का यत्न करेगा और फिर एक लहूलुहान डरावने हिंस्र पशु-सा बैठकर मरणांतक यातना में साँस लेने लगेगा। उसका रोमांच बीजरूपिणी संज्ञा होकर उसकी आँखों में पीला-पीला बनकर चमकेगा और फिर सुनसान तन्द्रा छा जायगी। आवेश के सूने पल मेज़ पर से गिरकर टूट जाते गिलास के समान होंगे और बिल्लौर के टुकड़े पड़े रह जायँगे।

मृत्यु की पगध्वनि गूँज रही है, किन्तु सत्यपाल भीगता भी क्यों डरे ? जिसे नष्ट करने का निश्चय कर लिया है उसके लिए भ्रम क्यों ? शरीर की व्यापकता निश्चय ही आत्मा की अनुभूति से बड़ी है। आत्मा एक अदृश्य कल्पना है, निरन्तर एक-दूसरे के पगचिह्न देखकर आज तक मनुष्य विश्वास करता रहा है कि कहीं कोई ऐसी मंज़िल है ज़रूर, जहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन है।

कहाँ जा रहा है सत्यपाल ? क्यों जा रहा है वह जीवन नष्ट करने ?

तब धर्म ने पुकारा—'यह आत्महत्या पाप है, पाप है····'

"पाप !" सत्यपाल हँसा। "समाज के नियन्ता के नियम टूट न जायँ तभी यह आत्महत्या पाप है।"

आँधी का थपेड़ा लहराया, पेड़ थर्राये, फिर वही हवा की गूँज एक गम्भीर पगध्वनि-सी सुनाई दी। रात्रि भयभीत आँखों से रोमांचित देह लिये आज क्यों सुन्न-सी काँपना तक भूल गई है ? फिर लगा जैसे पास कहीं कोई भयानक जन्तु गुर्रा उठा। और दूर नदी से हिस्-हिस् करती फुफकारती सी नागिन दौड़ी। पेड़ पर से कोई बड़े भारी स्वर में हँस उठा और फिर आवाज़ आई—'हूँ····हूँ····'

फिर सत्यपाल ने देखा, सरकती बिजली की त्वर चमक में सामने के पेड़ ने रस्सी-सी फेंकी जो सत्यपाल से कुछ दूर ही रह गई, भूलकर लौट गई। और अर्राकर सामने ही कोई पेड़ गिरा। ठीक उस समय इन्द्रभान रीता को प्रसन्न होकर उसके नृत्य पर बधाई दे रहा था। सत्यपाल पीछे हटा। आकाश में अचानक एक बड़ी ज़ोर की लपट-सी उठी और अन्धकार उसे खा-गया। फिर कहीं दूर क्षितिज के पास उसे लगा, कुत्तों और गीदड़ों की भयानक आवाज़ की ढाल पर टकराकर टूटती तलवार की झंकार-सी शून्य की मर्मर उठी, जिसमें कोई रो रहा था, अपने हृदय को फाड़ता हुआ।

सत्यपाल गर्दन तक पानी में डूब गया। वह बड़ी मुश्किल से निकला। अन्धकार एक विराट् कछुए की भाँति काँप रहा था, उसकी पीठ ऊपर-नीचे हो रही थी। अचानक किसीने हाथ बढ़ाकर सत्यपाल का पाँव पकड़ लिया। वह गिरा। पेड़ की जड़ थी। सत्यपाल बल लगाकर उठा। उस समय उसने देखा, वह बहुत दूर आ गया था, बहुत दूर····

वह उठा। उसमें एक नये साहस का संचार हुआ था। आज वह अपनी मर्यादा को पूरा कर सका है····पूरा कर सका है····

वह निश्चय ही जीत गया है, अब कोई कठिनाई नहीं है····

१८

रीता और इन्द्रभान जब घर में घुसे, दोनों अत्यन्त प्रसन्न थे। पर यहाँ आते ही रीता चौंक उठी।

"अरे!" उसके मुँह से निकला।

तब इन्द्रभान ने भी मोटर देखी। उसका भी माथा ठनका।

"आ गए शायद यह लोग?" रीता ने खीझकर कहा।

"भीतर चलो।" इन्द्रभान ने कहा।

मनोरमा कुर्सी पर लेटी थी। उसके केश बिखरे हुए थे और वह इस समय एक हाँपती हुई नागिन की तरह दिखाई दे रही थी। उसके नथुने बार-बार फड़क उठते थे, पर वह कहना चाहकर भी कुछ कहती नहीं थी। शायद किसी गहरे चिन्तन में पड़ी हुई थी। दोनों ने आश्चर्य से देखा कि एक अपरिचित आदमी और था जो बड़े ठाठ से पलँग पर पड़ा हुआ था।

विलास को उन्होंने पहले कभी देखा नहीं था। उसको देखते ही रीता और इन्द्रभान ने परस्पर संकेत से कुछ कहा। मनोरमा ने द्वार पर आहट होते ही मुड़कर देखा तो दोनों ने सिर झुकाये। मनोरमा ने मुस्कराते हुए उसी प्रकार प्रत्युत्तर दिया। इन्द्रभान पुराना घाघ था। वह कृत्रिम रूप से प्रसन्नता दरशाने लगा।

रीता ने मुँह पर एक बनावटी मुस्कान के साथ आगे बढ़कर स्नेह से अभ्यर्थना की और मनोरमा से पूछा—"कब आईं?"

मनोरमा ने उसी गौरव से देखा जिससे वह रीता को पहले देखती थी। रीता को कुछ कसक हुई क्योंकि अभी-अभी वह मालकिन थी।

"काफ़ी देर हुई," मनोरमा ने पैर फैलाकर कहा। उसके स्वर में वही उपेक्षा थी, वही अधिकार की भावना थी। इन्द्रभान ने सोचा, 'लाजमी है। सत्यपाल के साथ हो गई है तो अब क्यों यह किसी की

परवाह करेगी ? हमारी इज़्ज़त तो तब तक थी जब तक जान-पहचान की ज़रूरत थी।' वे दोनों भीतर आ गए।

"यह मेरे स्कूल में मेरी असिस्टेण्ट है," मनोरमा ने कहा, "और यह सत्यपाल के मैनेजर हैं, उनका सब काम सँभालते हैं। यह मेरे दोस्त विलास।"

विलास ने मुड़कर देखा। कहा—"ठीक है। पर मनोरमादेवी! यह सब तो यहाँ तक हुआ। और जब उन्हें मालूम देगा तो ? आगे की भी कुछ चिन्ता की है तुमने ?" वह आवेश में बैठ गया।

"तुम डरते हो ?" मनोरमा ने पूछा।

रीता और इन्द्रभान चौंके।

"नहीं," विलास ने कहा, "डरता तो नहीं, पर मोटर तो नीचे सत्यपाल की ही है न ? उसका तुम क्या करोगी ?"

"तुम जाओ," मनोरमा ने रीता और इन्द्रभान से कहा। वे बाहर चले गए।

विलास बिस्तर पर लेट गया। मनोरमा ने देखा, वह घबराया हुआ था। वह पलँग पर बैठ गई। रीता और इन्द्रभान ने कनखियों से देखा और आपस में इशारा किया।

मनोरमा विलास पर झुक गई। कहा—"मोटर मेरे पास भी है।"

फिर उसने कुछ धीरे से कहा। रीता और इन्द्रभान सुन नहीं सके। पर उन्होंने देखा कि जब मनोरमा ने बात समाप्त की, विलास कुछ चौंका और मनोरमा ने सिर हिलाया। फिर दोनों हँसे।

रीता ने धीरे से कहा—"यह नया दोस्त कौन है ?"

"मैं नहीं जानता।"

"फिर सत्यपाल का क्या हुआ ?"

उस समय सत्यपाल द्वार में घुसा। उसकी हालत अजीब हो रही थी।

रीता ने कहा—"देखो, देखो।"

इन्द्रभान काँप उठा। वह ऐसे खड़ा रह गया जैसे सकते की-सी हालत में पड़ गया। उसकी समझ में न आया कि क्या करे। सत्यपाल सीढ़ियाँ चढ़ रहा था।

रीता ने इन्द्रभान को द्वार की आड़ में खींच लिया। सत्यपाल ऊपर आ गया। वह ऊपर से नीचे तक भीगा हुआ और कीचड़ से लथपथ था। पिस्तौल का चमड़े का केस भी अब सीला हुआ-सा दिखाई दे रहा था। उसके घुटनों तक कीचड़ चढ़ी हुई थी।

सत्यपाल भीतर आ गया। उसकी आँखें लाल हो रही थीं और काफी बड़ी-बड़ी दिखाई देती थीं। वह इस समय ऐसा लग रहा था जैसे पत्थर और मिट्टी का बना कोई प्राणी था। अपनी कठोरता से वह बीभत्स दिखाई दे रहा था।

मनोरमा कुछ कह रही थी। सत्यपाल रुककर चुपचाप खड़ा रहा। वह इस समय प्रशान्त दिखाई दे रहा था।

विलास बैठ गया। उसने भी कुछ धीरे से कहा।

रीता और इन्द्रभान ने क्षण-भर झाँका।

इन्द्रभान ने कहा—"भीतर चलो।" विलास से मनोरमा फिर कुछ झुककर कहने में लगी हुई थी। मनोरमा उसके बहुत निकट आ गई थी। विलास के मुख पर उसके गन्धित बाल झूल रहे थे। सत्यपाल गम्भीर खड़ा देख रहा था जैसे यह सब उस पर कोई भी प्रभाव नहीं डाल रहा हो। वह निस्पन्द था।

"मनोरमा!" इन्द्रभान ने ज़ोर से कहा—"मालिक आ गए।"

मनोरमा और विलास छिटककर अलग हो गए।

"नहीं इन्द्रभान!" सत्यपाल ने कहा—"उन्हें बात ख़त्म कर लेने दो।"

रीता ने इन्द्रभान की कुहनी पकड़ी और इशारा किया।

विलास घबराया हुआ था, पर मनोरमा इस समय क्रुद्ध दिखाई

देती थी। कहा—"डराने आये हो ?"

"नहीं," सत्यपाल ने कहा।

विलास सँभला।

"तो फिर ?" मनोरमा ने कहा—"सरस्वती को छोड़कर आने की क्या ज़रूरत पड़ गई ? वहीं रहते।" वह हँसी। हठात् उसकी दृष्टि मुड़ी और उसने देखा, इन्द्रभान और रीता खड़े थे।

"तुम लोग जाओ," मनोरमा ने कहा।

"ठहरो," सत्यपाल ने कहा। उसने पिस्तौल केस से निकालकर कहा—"सब भीग गया। पानी था पानी।" वह पिस्तौल को उठाकर थोड़ा फेंकता फिर लपकता रहा। फिर कहा—"इन्द्रभान !"

इन्द्रभान बढ़ा—"जी सरकार।"

"यहाँ कुछ लिखने का सामान है ?"

"जी हाँ," इन्द्रभान भीतर से कागज़, कलम और बड़ा कलमदान उठा लाया। मनोरमा कभी सत्यपाल को देखती, कभी विलास को और कभी वह डरे हुए और सहमे-से इन्द्रभान और रीता को देखती।

"रख दो मेज़ पर," सत्यपाल ने पिस्तौल को केस में रखकर कहा।

इन्द्रभान ने आज्ञा का पालन किया।

सत्यपाल ने कुछ नहीं कहा। वह कुर्सी पर बैठ गया। कुछ भी उसे जैसे सोचने की आवश्यकता ही नहीं थी। बैठकर हाथ बढ़ाते हुए एक तौलिया खींचकर हाथ पोंछे और फिर उसने कन्धे झटकारे। मनोरमा ने देखा कि वह चुपचाप अब झुका हुआ-सा पाँव हिलाता मेज़ पर लिखने में लगा था।

रीता दीवार से सट गई थी। इन्द्रभान उसी के पास था।

"क्या किस्सा है ?" रीता फुसफुसाई।

"समझ में नहीं आता," इन्द्रभान ने असमर्थता से कहा।

"विलास घबरा रहा है।"

"शायद मनोरमा उसे भगाकर लाई है।"

"क्या कहते हो ?"

"मनोरमा ही लाई है।"

"कहीं मर्द को औरत भगाती होगी ?"

"औरत तो बड़ी भोली होती है न रीतादेवी !"

रीता ने चिढ़कर उसकी पीठ को ज़ोर से नोंचा।

कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था। मनोरमा की भौं तन गई थीं, विलास अब गम्भीर-सा देख रहा था। दोनों समझ नहीं पा रहे थे कि यह हो क्या गया ? क्यों आया है यह ? स्पष्ट है कि पैदल आया है, और तूफ़ान में पैदल आया है। कितना भयानक रहा होगा ?

लिखकर सत्यपाल उठा।

"इन्द्रभान !" उसने पुकारा।

"जी," इन्द्रभान आगे बढ़ा।

"रात को साफ़ दिखता है न ?"

"हुजूर, बिजली जल रही है।"

सत्यपाल हँसा। इन्द्रभान कृतज्ञ-सा दिखाई दिया। सत्यपाल ने गम्भीरता से कहा—"लो।"

उसने इन्द्रभान के हाथ में कागज़ देकर कहा—"इसे पढ़कर मनोरमा को सुना दो।"

मनोरमा बैठ गई। वह प्रमाणित करना चाहती थी कि वह घबराई नहीं है।

इन्द्रभान ने इबारत एक सरसरी निगाह से पढ़ डाली। पढ़कर उसकी आँखें फट गईं। उसने मालिक की तरफ देखा। मालिक ने फिर इशारा किया—"पढ़ो, पढ़ो, घबराओ नहीं।"

"मैं आज अपनी सारी जायदाद मिस मनोरमा और उसके डान्सिंग-स्कूल के नाम करता हूँ—सत्यपाल''''तारीख''''" इन्द्रभान ने पढ़कर सारांश सुना दिया।

रीता ने सुना और उसे विश्वास नहीं हुआ। इन्द्रभान ने फिर

दुहराया।

मनोरमा खड़ी हो गई, किन्तु सत्यपाल ने उस पर ग़ौर नहीं किया। मनोरमा के चेहरे पर अपमान की ज्वाला काँप उठी।

सत्यपाल कहता गया—"सब दस्तावेज मेरे सेफ़ में हैं। मेरा वकील सब ठीक....."

बात कट गई। मनोरमा की चूड़ियाँ झंकार उठीं। वह आगे बढ़ आई थी। उसने अत्यन्त घृणा से मुख विकृत करके हाथ उठाकर सत्यपाल को घूरते हुए तीखी आवाज में कहा—"खरीदने आये हो? तुम दुनिया-भर में सबको खरीद लोगे?"

विलास घबरा गया था। उसे लगा, बात बढ़ जायगी। सत्यपाल ने पिस्तौल फिर चमड़े के केस से बाहर निकाल लिया था। उसे हाथ में उछालते हुए उसने उसी संयत स्वर में उससे कहा—"जिसको खरीदा जा सकता है उसे खरीदना ही पड़ेगा, लेकिन तुमसे मैं सिर्फ़ एक भीख माँगने आया हूँ।"

भीख! मनोरमा समझी नहीं। वह बहुत-कुछ उगल देना चाहती थी, किन्तु वह सब गले में अटक रहा था। सत्यपाल इसे समझ गया था। कुछ सुनने के लिए ही वह चुप हो गया था।

विलास ने पूछा—"वह क्या है?"

सत्यपाल कुछ देर चुप रहा। फिर उसने विलास से ही कहा—"मनोरमा से नहीं, तुम्हीं से कहना है। सरस्वती उसी आम के पेड़ के नीचे तुम्हारा इन्तजार कर रही है। मैं तुम्हें जबर्दस्ती तो नहीं ले जा सकता, प्रार्थना कर सकता हूँ। सरस्वती से मैं वादा करके आया हूँ कि मैं तुम्हें जरूर उसके पास पहुँचा दूँगा।"

विलास को बिजली का तार छू गया। विद्वेष उसके अंग-अंग से झलक उठा। उसे लगा, वह एक निरीह वस्तु है जिससे सब लोग अपने खेल कर रहे हैं। उसने कहा—"गोया मैं कोई खिलौना हूँ।"

स्वर का तिक्त उपहास कमरे में गूँज उठा।

"खिलौना इसलिए नहीं कि अभी टूटे नहीं हो। तुमने उस स्त्री को छोड़ा है जो इतनी महान् है, इतनी पवित्र है....."

सत्यपाल रुक गया। विलास के मुख पर आसन्न उपहास अब और भी मुखर हो गया था। उसने भौं चढ़ाकर अत्यन्त विस्मय दिखाते हुए उससे मुस्कराकर कुछ अभिमान से कहा—"मुझे ताज्जुब है कि जो बातें मैं उसमें इतने दिनों में नहीं देख सका वह तुमने इतनी जल्दी कैसे देख लीं ?"

उस व्यंग्य में कितना विष छिपा था, यह वहाँ उपस्थित लोगों में से किसी पर भी छिपा नहीं रहा।

"शायद तुमने कभी उसे प्यार नहीं किया," सत्यपाल ने विनय से उत्तर दिया। वह उसे चिढ़ाना नहीं चाहता था।

"अगर तुमने किया था तो आज हमारे बीच में आने की तुम्हें क्या जरूरत पड़ गई ?" विलास ने मनोरमा के कन्धे पर हाथ रखकर कहा। मनोरमा उससे और सट गई।

"मैं मजबूर हूँ विलास ! सरस्वती का प्यार तुम्हें चाहता है। मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ। विलास, तुम्हें चलना ही होगा।" सत्यपाल ने अत्यन्त दयार्द्र स्वर में कहा। इन्द्रभान और मनोरमा दोनों को आश्चर्य हुआ। क्या यह वही सत्यपाल है ? क्या हो गया है इसे ? सत्यपाल आगे बढ़ा। विलास ने आश्चर्य और क्रोध से देखा, सत्यपाल एक दास की भाँति उसके पाँव पर गिर गया था।

विलास भौंचक खड़ा रहा। सम्भवतः उसके हृदय में जुगुप्सा थी। मनोरमा ने देखा, वह चिन्ता में पड़ गया था।

"नहीं, वे नहीं जायँगे," मनोरमा ने बीच में आकर कहा, "वे अब नहीं जायँगे।"

"तुम ठीक कहती हो ?" सत्यपाल ने उठते हुए पूछा।

मनोरमा हँसी। खिलखिलाहट में उसकी विजय की अधीर लिप्सा कमरे में बिखर गई। कहा—"शायद तुमने सोचा होगा कि तुम दौलत

देकर मुझे खरीद लोगे ? लेकिन यह न भूलो कि मनोरमा कौन है ? मनोरमा की आँख जिधर उठती है उधर दौलत बरसती है। जिधर देखकर वह मुस्कराती है, तुम-जैसे सैकड़ों बेवकूफ घायल होकर हाय-हाय करते हैं, तुम-जैसे कितने ही दौलतमन्द मेरे पैरों पर लेट सकते हैं। लेकिन मनोरमा !"

उसने फिर कहा—"मनोरमा सब-कुछ सह सकती है, परन्तु वह यह नहीं सह सकती कि एक औरत उसे हरा दे। वह मुझसे सत्यपाल को छीन ले ! वह और विलास को भी छीन ले ! मनोरमा किसी औरत का घमण्ड नहीं सह सकती।"

सत्यपाल हँसा। मनोरमा उसके उस निर्मम हास्य से और अधिक चिढ़ी। सत्यपाल अप्रभावित था।

"मुझे तुम्हारे रूप और जवानी पर बहस करने की फुरसत नहीं है, मुझे विलास चाहिए," सत्यपाल ने दृढ़ता से कहा।

विलास इस समय एक उलझन में पड़ा था।

"जब तक मैं हूँ, वह नहीं जायगा क्योंकि वह जानता है कि सरस्वती ने तुम्हें प्यार किया है....."

मनोरमा वाक्य पूरा नहीं कर सकी।

"चुप रहो," सत्यपाल गरज उठा। उसने कुछ ऐसी बात सुनी थी जो सुन करचुप रह जाना उसके लिए नितान्त असम्भव था। उसका हाथ आतुरता से उठा और अधीर होकर गुस्से से उसने गोली चला दी। विलास झपटकर मनोरमा के सामने आ गया। उसके कन्धे में गोली लगी। वह गिर गया, बेहोश हो गया। इन्द्रभान और रीता चीख उठे। मनोरमा विलास के शरीर को पकड़कर रोने लगी।

उसका रोना सुनकर सत्यपाल का दिल दहल गया। क्या सचमुच यह इसे इतना प्यार करती है ? क्या देख रहा है सत्यपाल ? क्या इस स्त्री में भी इतना ममत्व है ?

"कमीने ! निर्दयी ! तूने उसे मार डाला। तेरे दिल में इतना भया-

नक हत्यारा छिपा हुआ था ! जालिम ! सरस्वती के कहने से तू आखिर इसका खून करने पर आमादा हो गया ?" मनोरमा ने रोते हुए कहा। सरस्वती का नाम सुनकर सत्यपाल के कलेजे पर वार हुआ। गोली चलाने की बर्बरता से अब वह चैतन्य हो चुका था।

"मैं ऐसी गलती नहीं कर सकता कि इसे मार दूँ। इसको तो मैं लेने आया हूँ," सत्यपाल ने मुस्कराकर कहा—"वह बेहोश हो गया है।"

"तेरी बला से। बेहोश हो या मरे ज़ालिम !" मनोरमा ने रोते हुए कहा—"तूने तो कसर नहीं छोड़ी ?"

इन्द्रभान ने बैठकर देखा। वह मरा नहीं था। उसने कहा—"रीता ! डॉक्टर को फोन कर दो।"

"ठहरो," सत्यपाल ने कहा, "पहले मैं इसे ले जाऊँगा।"

"लेकिन मैं तुझे नहीं ले जाने दूँगी," मनोरमा ने कहा।

रीता जहाँ खड़ी थी, वहीं खड़ी रही। उसकी दृष्टि सत्यपाल की पिस्तौल पर थी। वह उसे छीन लेना चाहती थी। सत्यपाल समझ गया था। उसने रीता की ओर नली उठाई।

"तू इसे मार डालेगा," मनोरमा ने कहा, "तू कमीना है, हत्यारा है।"

"लेकिन मैं इसे ले जाऊँगा।"

"मैं नहीं छोड़ सकती इसे।"

"क्यों ?"

"सरस्वती के कम-से-कम यह काँटा तो खटकेगा कि वह एक ऐसे आदमी से प्रेम करते हुए उससे दगा करके धन के लिए तेरे हाथ बिक गई।"

सत्यपाल हँसा। कहा—"तेरा दिल बहुत छोटा है मनोरमा !"

"और तुम्हारा ?"

सत्यपाल चुप रहा।

"खूनी !" मनोरमा ने विप्लव से कहा—"और खूनी भी क्यों ? क्योंकि पराई औरत ने तुझे पागल बना दिया है····"

"मुझसे कुछ भी कहो, पर सरस्वती के खिलाफ मैं कुछ भी नहीं सुन सकता," सत्यपाल ने कहा।

"तुम शरीफ जो हो।"

"तुम यह कह सकती हो।"

दोनों ने एक-दूसरे को घूरा।

"कितना मासूम था यह आदमी ! तूने इसे मार डाला खूनी !" मनोरमा रो पड़ी।

इन्द्रभान को सत्यपाल पर क्रोध आ रहा था। रीता की इच्छा हो रही थी कि उससे पिस्तौल छीन ले। इन्द्रभान खड़ा हुआ और रीता आगे बढ़ी।

"खबरदार !" सत्यपाल ने कहा—"गोली मार दूँगा। अपनी-अपनी जगह पर खड़े रहो, ज़रा भी न हिलना।"

दोनों ठिठक गए। मनोरमा अब भी विलास के शरीर पर झुकी रो रही थी।

"वह मरा नहीं है, समझीं ? जब तुम रो चुको तो मुझसे कह देना। सरस्वती इन्तज़ार कर रही होगी। मुझे इसे ले जाना है।" सत्यपाल ने दृढ़ स्वर से कहा।

मनोरमा की आग में घी पड़ा। वह लपट उसकी आँखों में तीव्रता से दहक उठी। उसने उसे घूरा।

"नहीं, नहीं, मैं इसे नहीं ले जाने दूँगी।" उसने पूरी शक्ति से कहा—"तुम इसे ले जाओगे ?" फिर वह हँसी। कितनी रोमांचकारी हँसी थी वह कि रीता के रोंगटे खड़े हो गए। मनोरमा ने फिर हँसकर कहा—"सुनते हो सत्यपाल !" सत्यपाल झुका।

"आज मैं तुम्हें दिखा दूँगी कि औरत का इन्तक़ाम क्या होता है ?" मनोरमा ने कहा—"तुम अपने को बहुत-कुछ समझते हो न ?

आज मैं तुम्हारा घमण्ड चूर कर दूँगी।"

सत्यपाल ने जैसे कुछ नहीं सुना। वह केवल एकटक विलास को देख रहा था। उसने मनोरमा को देखा भी नहीं। विलास की ओर इस तरह उसे घूरता हुआ देखकर मनोरमा ने उसे अपने आँचल में छिपा लिया जैसे उसे इस जलते हुए अंगारे को आँचल में छिपाते हुए कोई भय नहीं हुआ।

"उसे नहीं छोड़ोगी ?" सत्यपाल ने चिल्लाकर कहा।

इन्द्रभान थर्रा गया। रीता भय से काँप उठी। सत्यपाल इस समय आवेश में पागल-सा दिखाई दे रहा था। उसने मनोरमा का कन्धा पकड़ लिया था।

"नहीं !" मनोरमा ने भी चिल्लाकर कहा।

सत्यपाल ने कन्धे को जोर से दबाकर उसे अलग कर देना चाहा, परन्तु मनोरमा उससे लिपट गई।

"मनोरमा !" वह पुकार उठा। उसने कन्धा छोड़ दिया और वह उसे पागल की तरह आँखें फाड़कर देखने लगा, जैसे उसके भीतर भयानक से कुछ और भी भयानक होता जा रहा था।

"नहीं !" मनोरमा फिर चीख उठी, "कभी नहीं।"

इन्द्रभान ने देखा, सत्यपाल हठात् गम्भीर और शान्त दिखाई देने लगा। उसका सारा आवेश दूर हो चुका था।

"मनोरमा !!" उसने अत्यन्त संयत स्वर से कहा। बड़ी गहरी आवाज थी वह। दिल के कोने-कोने को छू गई थी। ऐसा लगता था, किसी ने पिंजरे के शेर को छोड़ दिया था। पहले वह दहाड़ा था, फिर वह गुर्रा रहा था।

"नहीं, नहीं, नहीं....." मनोरमा ने अन्तरात्मा से उसे चुनौती देकर कहा—"नहीं छोड़ूँगी, नहीं छोड़ूँगी....."

सत्यपाल ने क्षण-भर देखा। फिर इन्द्रभान ने देखा कि सत्यपाल का हाथ उठा। पिस्तौल की नली मनोरमा के हृदय की ओर झुकी।

"तो लो····" सत्यपाल ने ठण्डे स्वर से कहा और गोली दाग दी। गोली दिल पार कर गई। मनोरमा का शरीर एकदम लुढ़क पड़ा। मुँह से पूरी चीख भी नहीं निकल सकी। सत्यपाल ने पिस्तौल का मुँह झुका दिया।

इन्द्रभान और रीता भय से चिल्ला उठे। वे उस कमरे से भागे।

सत्यपाल ने उधर नहीं देखा। वह इस समय मनोरमा के मुख को देख रहा था जो शान्त हो गया था। लहू से कमरे का फ़र्श भीग रहा था।

"तुमने कहा था, औरत का इन्तक़ाम ऐसा होता है, लेकिन तुम नहीं जानतीं कि मर्द का इन्तक़ाम कैसा होता है!" उसके शब्द फूट निकले। पर मनोरमा के प्रति उन शब्दों में कोई घृणा नहीं थी, जैसे सत्यपाल को वह एक बौनी दिखाई दे रही थी। उसने ठण्डे दिल से खून कर दिया, यह उसे नहीं सूझ रहा था। उसके सामने एक ही चित्र था—सरस्वती पेड़ के नीचे तूफ़ान में खड़ी रास्ता देख रही होगी। सरस्वती खड़ी होगी, तूफ़ान उसके सामने पराजित-सा हाहाकार कर रहा होगा। उसने देखा, रक्त की धार आकर विलास के मस्तक पर टपकी और फिर वह बहकर बगल से नीचे बहने लगी। विलास बेहोश ही पड़ा था।

सत्यपाल बैठ गया, और जैसे अपने-आपसे उसने कहा—"मुझे माफ़ कर दो, माफ़ करो मनोरमा, मुझे माफ़ करो, लेकिन मैंने सरस्वती से वादा किया था। मैं अपने फ़र्ज़ के लिए मजबूर था····"

बगल के कमरे में फोन करने का शब्द सुनाई दिया। सत्यपाल ने देखा, दरवाजा भीतर से पहले ही बन्द कर लिया गया था। शब्द आ रहे थे—'जी हाँ····सत्यपाल ने किया है····मौजूद है····भाग जायगा····जल्दी आइए····मोटर है उसके पास····वह····जी नहीं····उसके पास पिस्तौल है। हम उसे नहीं रोक सकते···'

सत्यपाल चैतन्य हुआ—तो इन्द्रभान ने फोन कर दिया?

अब क्या हो?

उसने इधर-उधर देखा।

"....आ रही है।" भीतर इन्द्रभान का स्वर गूँजा।

"बड़ा कमीना है यह।" रीता का स्वर सुनाई दिया।

सत्यपाल ने मनोरमा को विलास से अलग कर दिया और फिर मनोरमा को धीरे से लिटाया। फिर उसने विलास को उठा लिया और इधर-उधर देखा।

"कहीं भाग न जाय," रीता का स्वर सुनाई दिया।

"बाहर का दरवाजा खुला है।"

"तुम जाओ न, रोको न ?" रीता का स्वर सुनकर सत्यपाल तुरन्त विलास को उठाये हुए ही नीचे भागा। तेजी से सीढ़ियाँ उतरकर मोटर का द्वार खोला। विलास को कन्धे से उतारा।

बाहर अब भी तूफान चल रहा था। आज किसी चुड़ैल के आवाहन-सी हवा चलती हुई भागी जा रही थी। अनाहूत-सी, अदृश्य-सी, परन्तु मृत्यु के हाथों से भी नीली और ठिठुरी हुई....

मोटर में विलास को धरा और सत्यपाल ने स्टीयरिंग व्हील सँभाला। पाँव से क्लच दबाया और मोटर की घरघराहट सुनाई दी। खिड़की में से इन्द्रभान ने झाँका। कहा—"रीता ! वह जा रहा है।"

"कहाँ जायगा यह ?"

"सरस्वती के पास।"

मोटर भाग चली थी। देखते-ही-देखते सड़क पर सन्नाटा छा गया। सिर्फ़ तूफान अपनी पूँछ पटक रहा था, और कुछ नहीं था। बड़ी-बड़ी बूँदें गिरतीं और फिर हवा उन्हें छितराने के प्रयत्न में दाँत कड़कड़ाती। रीता भयभीत थी। उसी समय बिजली कड़की।

"बाहर चलो," इन्द्रभान ने कहा।

"वहाँ लाश है," रीता ने कहा, "मुझे डर लगता है।" और वह इन्द्रभान से डरकर चिपक गई।

उसकी गाड़ी जाने के पाँच मिनट बाद पुलिस की गाड़ी मनोरमा

के घर के द्वार पर रुकी। सिपाही ऊपर दौड़े। कमरे में मनोरमा का शव पड़ा था।

"कोई है ?" दारोगा चिल्लाया।

"कौन है ?" कमरे के भीतर से आवाज़ आई।

"पुलिस है, खोलो दरवाज़ा।"

रीता और इन्द्रभान बाहर आये।

"पकड़ लिया उसे ?" रीता ने पूछा।

"वह भाग गया है कहीं," एक सिपाही ने कहा।

इन्द्रभान ने कहा—"मैं चलता हूँ। मैं जानता हूँ, वह कहाँ गया है। आज देखूँगा उसे।"

रीता चलने को बढ़ी।

इन्द्रभान ने कहा—"तुम क्या करोगी चलकर ?"

"पर यहाँ तो लाश पड़ी है....."

"दो सिपाही यहीं रहेंगे," दारोगा ने कहा।

और तब इन्द्रभान ने कहा—"जल्दी चलिए। तूफ़ानी रात है, बहुत दूर न निकल जाय....."

वह आगे बढ़ा। उसने हाथ बढ़ाकर कहा—"रीता ! यह कागज़ रख लो।"

"ओ, हाँ," कहकर रीता ने वह कागज़ ले लिया।

वह सत्यपाल की वसीयत थी, डान्सिंग स्कूल के नाम।

१६

तूफ़ान का हाहाकार प्रचण्ड होकर बजता था और पानी अब भी बरस रहा था, एक रव एक तार होकर अँधेरा उससे जूझ रहा था।

सत्यपाल गाड़ी को तेज़ी से भगाने लगा। इस समय उसे केवल सुधि थी कि वह सरस्वती तक पहुँच जाय। पुलिस की गाड़ी पीछे ही दौड़ी आ रही थी। वे अपनी गति और भी तेज़ करते जा रहे थे। दारोगा उचक रहा था। इन्द्रभान सिपाही के पीछे बैठा था। जानता था, मामला सहज नहीं है। जब बार-बार इशारा करने पर भी सत्यपाल न रुका तो दारोग़ा ने गोली चलाई। इन्द्रभान ने झुककर देखा और सामने की गाड़ी पर फिसलकर गोली घुसी। मोटर का शीशा टूटा और उसके शीशे छितराकर एक स्थान से चटक गए। शीशा पार करके गोली सत्यपाल की पीठ में लगी। सत्यपाल स्टीयरिंग व्हील पर धक से एक बार टकराया। उसी समय पानी वेग से बरसने लगा।

सत्यपाल ने विलास को मुड़कर देखा। वह पड़ा था पिछली सीट पर। अब शायद वह सो गया था। सत्यपाल ने देखा, वह सुरक्षित था। गाड़ी बराबर पहाड़ी रास्ते पार कर रही थी। दारोगा ने दोबारा गोली दागी, शीशे फिर टूटे। अब की जो टुकड़े उड़े तो सत्यपाल तिरछा होकर गोली तो सफ़ा बचा गया पर सत्यपाल का मुँह लहूलुहान हो गया क्योंकि मुँह पर काँच के टुकड़े गड़ गए। इस बार गोली आगे के शीशे को पार करके निकल गई थी।

विलास होश में आ गया था। वह उठ बैठा, परन्तु कुछ समझा नहीं।

"कहाँ जा रहे हो ?"

"बोलो मत, पुलिस····"

फिर एक गोली सत्यपाल के कान पर लगी।

"छिप जाओ विलास, कहीं तुम्हें न लग जाय," सत्यपाल चिल्ला उठा और झुककर निर्भय-सा उस समय वह विलास के सामने हो गया।

विलास की आँखें आश्चर्य से फट गईं।

दो गोलियाँ और लगीं। सत्यपाल कराहा। विलास ने देखा। फिर आर्त वेदना के आधिक्य से सत्यपाल हँसा। उसने मुँह पोंछा। उंग-

लियाँ और मुँह दोनों ही रक्त से भीग गए। उसने कहा—"विलास को कुछ न होने दूँगा सरस्वती····"

पहाड़ी रास्ता अब ख़त्म हो रहा था। गाड़ी मोड़ पर आते ही सत्यपाल ने देखा कि पीछे की गाड़ी अब नीचे पर थी।

हठात् सत्यपाल ने मुड़कर गोली चलाई।

शीशा टूटा और एक घबराया चीत्कार सुनाई दिया जैसे किसी के गोली लग चुकी थी। फौरन उसने तेज़ी से अपनी गाड़ी मोड़ी और रोक दी।

"विलास, उतरो जल्दी···" सत्यपाल ने कहा। विलास परिस्थिति समझ गया था। वह तुरन्त उतर आया। सत्यपाल ने गाड़ी को खड्ड में धकेल दिया। गाड़ी लुढ़की और फिर वह वेग से नीचे चट्टान पर टकराई। गूँज से पर्वत दहल उठा।

"चलो," सत्यपाल ने उसका हाथ पकड़कर कहा।

विलास लड़खड़ाया। देर का समय नहीं था। विलास धीरे-धीरे चल रहा था। उसको देखकर झट सत्यपाल ने उसे कन्धे पर उठा लिया।

तूफ़ान उमड़ने लगा था—सूँ-साँ, सूँ-साँ····

सत्यपाल हँसा। वह जंगल में मुड़कर पार कर गया। उस समय मोड़ पार करके धीरे चलने वाली पुलिस की मोटर रुकी। सब उतरे।

"मर गया," एक ने खड्ड पर टॉर्च की रोशनी फेंककर कहा।

वे लौट चले। उनकी गाड़ी की घर्राहट सुनाई नहीं दी। सत्यपाल गाँव में आ गया था। सहसा ही विलास ने कहा—"पानी!"

"पानी लाता हूँ," सत्यपाल ने कहा और उसे उतारकर धरती पर लिटा दिया। विलास बैठ गया। तभी अँधेरे में किसी की दर्दनाक कराह सुनाई दी—"पानी।"

बिजली की चमक में सत्यपाल ने देखा, एक आदमी पड़ा था।

"कौन है?" सत्यपाल ने पूछा।

बिजली फिर चमकी।

"कौन सत्यपाल ? भगवान् ! मरते वक्त तूने सचमुच इसे भेज दिया ?" वह आदमी भीगा था, खिसकने लगा था। सत्यपाल चौंका। 'कौन है यह ?' सत्यपाल ने सन्देह से सिर पर हाथ फेरा और तीव्र स्वर से कहा—"तू कौन है ? तू मुझे कैसे जानता है ? मैं तो तुझे नहीं जानता।"

"तू नहीं जानता मुझे ? मैं····मैं हरीश हूँ सत्यपाल, तेरा दोस्त। बीमारी ने मुझे मार दिया है····"

सत्यपाल चीख उठा—"हरीश····मेरे दोस्त····"

उसने उसे भुजाओं में बाँध लिया।

"तू तो विलायत चला गया था ?" सत्यपाल कराह उठा।

"नहीं सत्यपाल, वह अफ़वाह मैंने ही उड़ाई थी। भगवान् ने मुझे उसी का बदला दिया है। सत्यपाल, दिल को पत्थर करके सुन, मैंने ही तेरे घर को बरबाद कर दिया।"

सत्यपाल ने चौंककर उसे छोड़ दिया। वह व्यक्ति कराह-कराहकर उसके मुँह के पास कहने लगा—"मैं ही चन्दा को भगा लाया था। मेरी ही मीठी बातों ने उसे बहका दिया था। मैंने उसके ज़ेवर बेचकर उसे छोड़ दिया। वह मर ही गई। मैंने उसे कहीं का न रखा····"

"हरीश !" सत्यपाल चिल्ला उठा। हरीश उसी दर्दनाक तरीके से चिल्ला उठा। विलास सुन रहा था। सत्यपाल ने अपना सिर दोनों हाथों से पकड़ लिया।

"यह मैं आज तक नहीं समझ सका कि वह ऐसी कौनसी बात थी जिसकी वजह से एक स्त्री अपने पति को छोड़कर चली गई। क्या था तुझमें ऐसा ? क्या था तेरे पास ? दौलत ? शक्ल ?" सत्यपाल ने आतुरता से पूछा।

"पागल ! तूने स्त्री को सब-कुछ दिया पर उसे घर में बन्द करके रखा। उसे तूने इतनी भी आजादी न दी कि वह अपना भला-बुरा

सोचने की ताकत रखती। तूने अपनी ईमानदारी में कुछ भी नहीं उठा रखा, पर वह नादान थी, भोली थी।" सत्यपाल आँखें फाड़कर सुनता रहा। उसे लगा, सारी दुनिया घूम रही थी। हरीश चुप हो गया। वह खाँस उठा।

"पानी....." फिर कराह उठा।

"पानी," विलास का सूखा कण्ठ घरघराया।

सत्यपाल हँसा।

"किसे पिलाऊँ ? उसे जिसने मेरी बीवी को भगाकर मेरा घर बरबाद कर दिया और आज भिखारी की तरह पानी माँग रहा है, या उसे जो अपनी पवित्र स्त्री को छोड़कर भाग रहा था, जिसे मैं लौटा लाया हूँ....."

उसने सिर पकड़ लिया।

"हरीश, तूने ऐसा सबक़ दिया है कि मैं तुझे दोस्त नहीं उस्ताद समझकर पानी पिलाऊँगा," सत्यपाल ने फिर हँसकर कहा।

वह उठा। पास के ताल का पानी अब ऊपर तक उपट आया था। उसने पानी लाकर दोनों को पिलाया। हरीश, 'सत्यपाल, मुझे माफ़ कर, माफ़ कर,' कहता हुआ बिलबिला उठा। सत्यपाल ने देखा कि वह अपना हाथ पकड़े था। वह वेदना से चिल्ला उठा।

"माफ़....माफ़....." वह हाँपने लगा, जैसे प्राण कण्ठ में अटके थे।

"हरीश, मैंने तुझे माफ़ कर दिया," सत्यपाल ने धीरे से कहा।

हरीश मर गया।

"उस्ताद !" सत्यपाल के होंठ बड़बड़ाये। विलास ने देखा, उस कठोर व्यक्ति की आँखों से उस समय दो बूँद आँसू गिरे।

कुछ देर नीरवता रही। फिर सत्यपाल ने कहा—"चलो विलास !"

विलास उठा।

बिजली चमकी।

दूर से सरस्वती चिल्लाई—"विलास !"

"भागो नहीं सरस्वती, सुबह का भूला शाम को घर आ गया है," सत्यपाल ने चिल्लाकर कहा। पर वह आ गई थी।

"विलास ! मेरे विलास !" वह हाँप गई।

"सरस्वती !" विलास ने उसे भुजाओं में भर लिया।

सत्यपाल देखता रहा, देखता रहा। तब वह खाँसा। सरस्वती का ध्यान टूटा। सामने रक्त-रंजित सत्यपाल खड़ा था।

"क्या हुआ तुम्हें ?" सरस्वती चीख़ उठी।

"सरस्वती ! मैंने अपना वादा पूरा कर दिया, लेकिन मैंने मनोरमा का खून किया है। मुझे पुलिस के पास जाना चाहिए····मुझे पुलिस के पास जाकर अपना अपराध स्वीकार करना चाहिए····" सत्यपाल आगे बढ़ा। अब उसमें शक्ति नहीं रही थी। ज्वार उतर चुका था। प्रतीक्षा का अन्त था। वह गिर गया। उसका मुँह कीचड़ में काला हो गया, वह ज़ोर-ज़ोर से साँस ले रहा था।

सरस्वती ने कहा—"तुम आदमी नहीं, देवता हो, क्योंकि देवता ही एक साथ इतनी नफ़रत और इतना प्रेम कर सकते हैं। तुमने वह किया जो आदमी नहीं कर सकते····" सत्यपाल बहुत ही तृप्ति से उस समय मुस्कराया। उसकी आँखों में जो पागलपन था वह अब खो चुका था। उसने धीरे-धीरे अटककर कहा—"आज मैं यह सुनकर पवित्र हो गया हूँ सरस्वती, आज मैं सचमुच कितना सुखी हूँ ! सौ बरस नहीं, वह एक पल जब किसी का विश्वास दीपक बनकर जलता है, इन्सान इन्सान बनता है·····"

सत्यपाल का सिर लुढ़क गया। वह मर गया था। आकाश में भोर का तीर छूट चुका था। पहले प्रकाश में सरस्वती की आँखों से दो बूँद आँसू गिरे····गिरकर सत्यपाल और मनोरमा की तरह धूल में मिल गए।